हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) जिस नाशरहित मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत्, सर्वमिदं परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत् सब यह जाना जाता है और (येन) जिस से (सप्तहोता) जिस में सात होता हों ऐसा (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ (अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं) (तायते) विस्तृत किया जाता है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसङ्कल्पम्) मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ॥ २३ ॥

यस्मिन्नृचः साम यजूꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः । यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २४ ॥ य० अ० ३४ । मं० ५ ॥

हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचा, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिसमें (यजूꣳषि) यजुर्वेद (और अथर्ववेद भी) (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि-पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २४ ॥

**सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥ २५ ॥
य० अ० ३४ । मं० ६ ॥**

(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को (सुषारथिः, अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे (नेनीयते) अतिशय करके (इधर उधर) ले जाता है और जो मन, अच्छा सारथि (अभीशुभिः) रस्सियों से (वाजिन, इव) वेग वाले घोड़ों को जैसे (यमयतीति शेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है और (यत्) जो (हृत्, प्रतिष्ठम्) हृदयमें स्थित है (अजिरम्) जरारहित है (जविष्ठम्) अतिशय गमनशील है (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्ध संकल्प वाला (अस्तु) हो ॥ २५ ॥

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ ३र १ २ ३ १ २
**स नः पवस्व शङ्गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥
साम० उत्तरार्च्चिके० प्रपा० १ । मं० १ ॥**

हे (राजन्) सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गवादि दूध देने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों। (जनाय) मनुष्यमात्र के लिए (शम्) शान्ति देने वाले हों। (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिए (शम्) सुखकारक हों। (ओषधीभ्यः) गेहूँ आदि ओषधियों के लिए हमें (शम्, पवस्व) शान्ति दीजिए ॥ २६ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥ २७ ॥
अथर्व० का० १९ । सू० १५ । मं० ५ ॥

हे भगवन् ! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षलोक (नः) हमारे लिए (अभयम्) निर्भयता को (करति) करे। (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करें। (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो। (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो। (उत्तरात्, अधरात्) ऊँचे और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ॥ २७ ॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥२८॥
अथर्व० कां० १९ । सू० १५ । मं० ६ ॥

हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो। (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो। (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो। (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो। (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो। (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो। (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाएं (मम, मित्रम्) मेरी मित्र (भवन्तु) हों।

इति शान्तिप्रकरणम्

अथ सामान्यप्रकरणम्

नीचे लिखी हुई क्रिया सब संस्कारों में करनी चाहिये, परन्तु जहां कहीं विशेष होगा वहां सूचना करदी जायगी कि यहां पूर्वोक्त और इतना अधिक करना।

यज्ञदेश—यज्ञ का देश पवित्र अर्थात् जहां स्थल, वायु शुद्ध हो, किसी प्रकार उपद्रव न हो।

यज्ञशाला*—इसी को यज्ञमण्डप भी कहते हैं, यह अधिक से अधिक सोलह हाथ समचौरस चौकोण और न्यून से न्यून आठ हाथ की हो; यदि भूमि अशुद्ध हो तो यज्ञशाला की पृथ्वी और जितनी गहरी वेदी बनानी हो उतनी पृथ्वी दो दो हाथ खोद अशुद्ध निकाल कर उसमें शुद्ध मट्टी भरें। यदि १६ (सोलह) हाथ की समचौरस हो तो चारों ओर २० (वीस) खम्भे और जो आठ हाथ की हो तो १२ (बारह) खम्भे लगा कर उन पर छाया कर, वह छाया की छत्त वेदी की मेखला से १० (दश) हाथ ऊंची अवश्य होवे और यज्ञशाला के चारों दिशा में चार द्वार रक्खें और यज्ञशाला के चारों ओर ध्वजा, पल्लव आदि बांधें, नित्य मार्जन तथा गोमय से लेपन करें और कुंकुम, हलदी, मैदा की रेखाओं से सुभूषित किया करें। मनुष्यों को योग्य है कि सब मङ्गल कार्यों में अपने और पराये कल्याण के लिये यज्ञद्वारा ईश्वरोपासना करें, इसीलिए निम्नलिखित सुगन्धित आदि द्रव्यों की आहुति यज्ञकुण्ड में देवें।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

जो लक्ष आहुति करनी हों तो चार चार हाथ का चारों ओर समचौरस चौकोण कुण्ड ऊपर और उतना ही गहरा और चतुर्थांश नीचे अर्थात् तले में १ (एक) हाथ चौकोण लम्बा चौड़ा रहे। इसी प्रकार जितनी आहुति करनी हों उतना ही गहिरा चौड़ा कुण्ड बनाना परन्तु अधिक आहुतियों में दो दो हाथ अर्थात् दो लक्ष आहुतियों में छः हस्त परिणाम का चौड़ा और समचौरस कुण्ड बनाना, और

---

* इस विषय का प्रमाण देखना हो तो पारस्कर गृह्यसूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये। मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवामतः। कार्यः षोडशहस्तो वा ह्यूनहस्तो दशावधिः। स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठितेत्यादि, अनेकमतान्युल्लिलेख गदाधरः।

(पारस्कर गृ० का० ४ का० १)

जो पचास हज़ार आहुति करनी हों तो एक हाथ घटावे अर्थात् तीन हाथ गहिरा चौड़ा समचौरस और पौन हाथ नीचे तथा पच्चीस हज़ार आहुति देनी हों तो दो हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे, दश हज़ार आहुति तक इतना ही अर्थात् दो हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे रखना, पांच हज़ार आहुति तक डेढ़ हाथ चौड़ा गहिरा समचौरस और साड़े आठ अङ्गुल नीचे रहे। यह कुण्ड का परिमाण विशेष घृताहुति का है, यदि इस में २५०० (ढाई हज़ार) आहुति मोहनभोग, खीर और २५०० (ढाई हज़ार) घृत की देवे तो दो ही हाथ का चौड़ा गहिरा समचौरस और आध हाथ नीचे कुण्ड रक्खे, चाहे घृत की आहुति देनी हों तथापि सवा हाथ से न्यून गहिरा सम तल चौरस और चतुर्थांश नीचे न बनावे और इन कुण्डों में १५ (पन्द्रह) अंगुल की मेखला अर्थात् पांच पांच अंगुल की ऊंची ३ (तीन) बनावे। और यह तीन मेखला यज्ञशाला की भूमि के तले से ऊपर करनी, प्रथम पांच अंगुल ऊंची और पांच अंगुल चौड़ी इसी प्रकार दूसरी और तीसरी मेखला बनावें।

यज्ञसमिधा*

पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलर, आम, बिल्व आदि की समिधा वेदी के प्रमाणे छोटी बड़ी कटवावें, परन्तु ये समिधा कीड़ा लगी, मलिन-देशोत्पन्न और अपवित्र पदार्थ आदि से दूषित न हों अच्छे प्रकार देख लेवे और चारों ओर बराबर कर बीच में चुनें।

होम के द्रव्य चार प्रकार

(प्रथम—सुगन्धित) कस्तूरी, केशर, अगर, तगर, श्वेतचन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि। (द्वितीय—पुष्टिकारक) घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न चावल, गेहूं, उड़द आदि। (तीसरे—मिष्ट) शक्कर, सहत, छुआरे, दाख आदि। (चौथे—रोगनाशक) सोमलता और गिलोय आदि ओषधियां।

स्थालीपाक

नीचे लिखी विधि से भात, खिचड़ी, खीर, लड्डू, मोहनभोग आदि सब उत्तम पदार्थ बनावें। इसका प्रमाण:—

ओ३म्। देवस्त्वा सविता पुनात्वच्छिद्रेण वसोः पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः॥ यजु० अ० १। मं० ३, ३१॥

---

* प्रमाण देखना हो तो पार० गृ० सू० प्रथम का० प्र० क० के गदाधर-भाष्य में देख लेना चाहिए। (अनुवादक)

(अर्थः) (सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्वा) तुझ यज्ञ को अपनी दी हुई पवित्रकारक वस्तुओं से (पुनातु) पवित्र करे वा करावे ।

इस मन्त्र का यह अभिप्राय है कि होम के सब द्रव्यों को यथावत् शुद्ध अवश्य कर लेना चाहिये, अर्थात् सब को यथावत् शोध, छान, देख, भाल, सुधार कर करें, इन द्रव्यों को यथायोग्य मिला के पाक करना । जैसे कि सेर भर मिश्री के मोहनभोग में रत्ती भर कस्तूरी, मासे भर केशर, दो मासे जायफल, जावित्री, सेर भर मीठा सब डाल कर, मोहनभोग बनाना, इसी प्रकार अन्य—मीठा भात, खीर, खिचड़ी, मोदक आदि होम के लिये बनावे । चरु अर्थात् होम के लिये पाक बनाने की विधिः—

ओं अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि * ।

(अर्थः) अग्नि के लिये तुझ को प्रीति से डालता हूं ।

अर्थात् जितनी आहुति देनी हों प्रत्येक आहुति के लिये चार चार मुट्ठी चावल आदि ले के——

ओं अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि । यजु० १ । १३ ॥

(अर्थः) तुझ अग्नि के लिये प्रीतिपूर्वक छोड़ता हूं ।

अर्थात् अच्छे प्रकार जलसे धोके पाकस्थाली में डाल अग्नि से पका लेवे, जब होम के लिये दूसरे पात्र में लेना हो तभी नीचे लिखी आज्यस्थाली वा शाकल्य-स्थाली में निकाल के यथावत् सुरक्षित रक्खे, और उस पर घृत सेचन करे ।

यज्ञपात्र

विशेष कर चांदी अथवा काष्ठ के पात्र होने चाहियें, निम्नलिखित प्रमाणे—

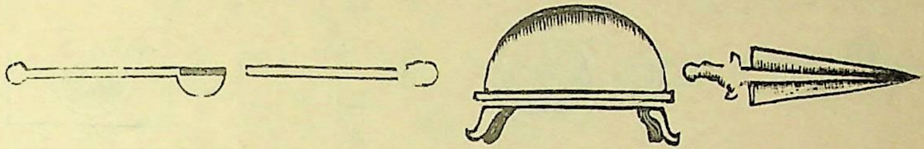
अथ पात्रलक्षणान्युच्यन्ते

बाहुमात्र्यः पाणिमात्रपुष्कराः । षडङ्गुलखातास्त्वग्बिला हंस-मुखप्रसेकाः । मूलदण्डाश्चतस्रः स्रुचो भवन्ति । तत्र पालाशी

* ऐसे बोलने की वैदिकों की परिपाटी है, देखो आश्वला० गृ० सू० अ० १, १० वीं कण्डिका, सू० ६ ॥ (अनुवादक)

जुहूः । आश्वत्थ्युपभृत् । वैकङ्कती ध्रुवा । अग्निहोत्रहवणी च । अरत्निमात्रः खादिरः स्रुवः । अङ्गुष्ठपर्वमात्रपुष्करः । तथाविधो द्वितीयो वैकङ्कतः स्रुवः । वारणं बाहुमात्रं मकराकारमग्निहोत्र-हवणीनिधानार्थं कूर्चम् । अरत्निमात्रं खादिरं खड्गाकृति वज्रम् । वारणान्यहोमसंयुक्तानि । तत्रोलूखलं नाभिमात्रम् । मुसलं शिरो-मात्रम् । अथवा मुसलोलूखले वार्क्षे सारदारुमये शुभे इच्छाप्र-माणे भवतः । तथा—खादिरं मुसलं कार्यं पालाशः स्यादुलूखलः । यद्वोभौ वारणौ कार्यौ तदभावेऽन्यवृक्षजौ ॥ शूर्पं वैणवमेव वा । ऐशीकं नलमयं वाऽचर्मबद्धम् । प्रादेशमात्री वारणी शम्या । कृष्णाजिनमखण्डम् । दृषदुपले अश्ममये । वारणीं २४ हस्त-मात्रीं २२ अरत्निमात्रीं वा खातमध्यां मध्यसंगृहीतामिडापा-त्रीम् । अरत्निमात्राणि ब्रह्मयजमानहोतृपत्न्यासनानि । मुञ्ज-मयं त्रिवृतं व्याममात्रं योक्त्रम् । प्रादेशदीर्घे अष्टाङ्गुलायते षड-ङ्गुलखातमण्डलमध्ये पुरोडाशपात्र्यौ । प्रादेशमात्रं द्व्यङ्गुलपरी-णाहन्तीक्ष्णाग्रं श्रितावदानम् । आदर्शाकारे चतुरस्रे वा प्राशि-त्रहरणे । तयोरेकमीषत्खातमध्यम् । षडङ्गुलकङ्कतिकाकारमुभ-यतः खातं षडवदात्तम् । द्वादशाङ्गुलमर्द्धचन्द्राकारमष्टाङ्गुलोत्से-धमन्तर्द्धानकटम् । उपवेशोऽरत्निमात्रः । मुञ्जमयी रज्जुः । खादि-रान् द्वादशाङ्गुलदीर्घान् चतुरङ्गुलमस्तकान् तीक्ष्णाग्रान् शङ्कून् । यजमानपूर्णपात्रं पत्नीपूर्णपात्रं च द्वादशाङ्गुलदीर्घं चतुरङ्गुलवि-स्तारं चतुरङ्गुलखातम् । तथा प्रणीतापात्रञ्च । आज्यस्थाली द्वाद-शाङ्गुलविस्तृता प्रादेशोच्चा । तथैव चरुस्थाली । अन्वाहार्यपात्रं पुरुषचतुष्टयाहारपाकपर्याप्तं समिदिध्मार्थं पलाशशाखामयं कौशं बर्हिः । ऋत्विग्वरणार्थं कुण्डलाङ्गुलीयकवासांसि । पत्नीयजमान-परिधानार्थं क्षौमवासश्चतुष्टयम् । अग्न्याधेयदक्षिणार्थं चतुर्विं-शतिपक्षे एकोनपञ्चाशद्गावः । द्वादशपक्षे पञ्चविंशतिः । षट्पक्षे त्रयोदश । सर्वेषु पक्षेषु आदित्येऽष्टौ धेनवः । वरार्थं चतस्रो गावः (१) ॥

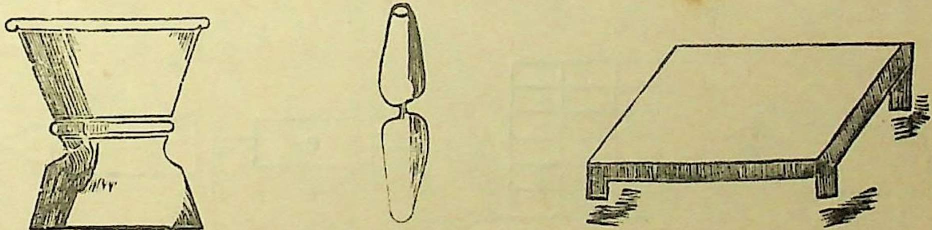
स्रुवः ४ अंगुल २४ शम्याप्रादेश १ । अन्तर्धान १ अं० १२ । खांडा अंगुल २४



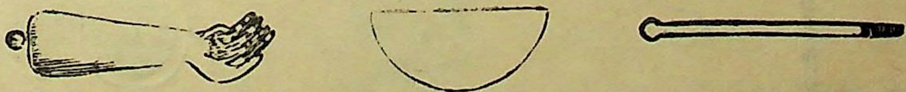
श्रृतावदान प्रादेशमात्र कूर्च बाहुमात्र १ स्रुच् सर्व ४ बाहुमात्र ।



उलूखल नाभिमात्र मुसल पाटला ४ लम्बा २४ अंगुल

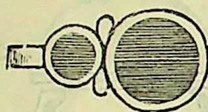


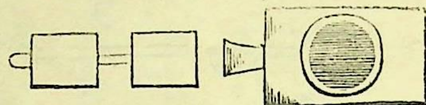
उपवेश १ अं० २४ पूर्णपात्र अं० १२ चौड़ा अभ्रि० १ अं० २४ ।
अंगुल ६



प्राशित्रहरणे दर्पणाकार | पिष्टपात्री | षड्वत अंगुल १२ | पुरोडाशपात्री



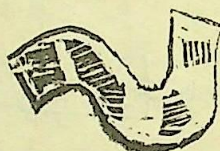




प्रणीता अं० १२ । प्रोक्षणी अं० १२ । | अंगोछा २४ अंगुल लम्बा | अरणी ४ ।

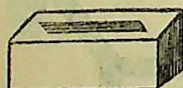


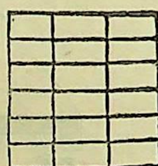


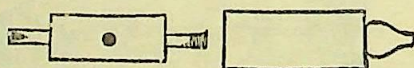




अंगुल ६ पोली अंगुल ४ ऊंची। अधरारणी | उत्तरारणी टुकड़ा १८ | ओबली अं० १२ | चात्र अं० १२ ।



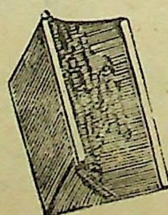


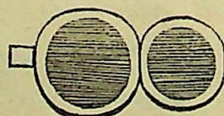


मूलेखात दृषद् | उपल | शूर्प | इड़ा अंगुल १२









यज्ञपात्रों के लक्षण—आपस्तम्बीय यज्ञ परिभाषासूत्र, शाङ्खायन श्रौत-सूत्रादिकों के अनुसार लिखे गए हैं:—चार प्रकार की स्रुक् होती हैं।

"ध्रुवोपभृज्जुहूर्नां तु स्रुवो भेदाः स्रुचः स्त्रियामिति श्रौतव्यवहारमूलककोशाद् ध्रुवोपभृज्जुहूस्रुवाणां चतुर्णां वाचकः स्रुक् शब्दः" (इति श्रौतपदार्थनिर्वचनकारः पृ० ११)

१ ध्रुवा, २ उपभृत्, ३ जुहू, ४ स्रुव। ये चारों स्रुवाएं डेढ़ डेढ़ हाथ मात्र लम्बी हों, हाथ के चिल्ले के बराबर जिनके मुख का गहराव हो, त्वगूभाग की ओर से जिन का मुख छ अंगुल खोदा गया हो अर्थात् चीर कर भीतर से जिनका मुख न खोदा गया हो, तथा हंस के मुख के समान घृत गिराने के लिए एक ढालू पनाली जिनमें बनी हो और मूल की ओर जिसका दण्ड हो अर्थात् काष्ठ के अग्रभाग की ओर उनमें मुख किया गया हो, ऐसी स्रुचा होनी चाहिए। "जुहू" ढाक की लकड़ी की बनानी चाहिए। "उपभृत्" पीपल की लकड़ी और "ध्रुवा" विकङ्कत वृक्ष (कटाई) की तथा "स्रुव" खदिर–खैर (जिसका कत्था बनाया जाता है) का बनाना चाहिये। जिससे अग्नि में आहुतियां दी जावें उसे "जुहू" कहते हैं, जुहू के पास रहने वाली स्रुचा का नाम "उपभृत्" है इसे अध्वर्यु अपने बायें हाथ में रखता है। "ध्रुवा" यह जुहू जैसी होनी चाहिये हवन के लिए घी रक्खा जाता है यज्ञसमाप्तिपर्यन्त बराबर रक्खी रहती है। "स्रुव" यह चौबीस अंगुल लम्बा होना चाहिये, अंगूठे के पोरे के प्रमाण इसका गोल बिल होना चाहिये, यह भी घृत डालने के काम में आता है। यदि अधिक आहुति देनी हों तो दूसरा "स्रुव" विकङ्कत का बनाना चाहिये। "स्रुव" विशेषतया दर्श, पौर्णमासादि इष्टियों में ही काम आता है। "अग्निहोत्र हवणी" साधारण अग्निहोत्र में काम आती है। यह लम्बाई में २४ (चौबीस) अंगुल की बनानी चाहिए और इसका आठ अंगुल परिमाण का गोल बिल होना चाहिए, इसी "अग्निहोत्र हवणी" में "प्रोक्षणी" नामक जल, जिससे चावल आदि शुद्ध किए जाते हैं–प्रोक्षित होते हैं, रक्खे रहते हैं।

अग्निहोत्र हवणी के नीचे रखने के लिए डेढ़ हाथ लम्बा मगर की सी मूर्ति का, वरना वारुणी वृक्ष (इसके पत्ते कडुवे होते हैं) का "कूर्च" बनाना चाहिये।

२४ (चौबीस) अंगुल खैर के वृक्ष का तलवार जैसा "वज्र" बनाना चाहिए, यह छुवारे आदि तोड़ने के काम में आता है। जो होम के समय में काम नहीं आते ऐसे

यज्ञपात्र—ओखली मूसल आदि, सामान्यतया वरना वृक्ष के बनाने चाहिए। उलूखल=ओखली, नाभि के बराबर हो और मूसल शिर के बराबर। अथवा मूसल और उलूखल, किसी ठोस काष्ठ के सुन्दर जैसे लम्बे चौड़े इष्ट हों वैसे ही बना लेवें। इस विषय में याज्ञिक लोग कहते हैं। मूसल खैर का, उलूखल ढाक का हो अथवा दोनों वरना के हों यदि खैर और वरना न मिलें तो अन्य किसी वृक्ष के बनाये जायँ। शूर्प=सूप (छाज) बांस का ही हो अथवा सिरकी या नल नामक घास का हो पर उसमें चमड़ा न लगाया जाय। यज्ञ में चावल आदि जो हवि के काम में आते हैं, उनके तुष आदि को हटाने के लिए यह बनाया जाता है। १२ (बारह) अंगुल लम्बी वरना वृक्ष की एक "शम्या" बनाई जाती है। यह हविष् के पेषण-समय में शिला के नीचे उत्तर को अग्रभाग करके लगादी जाती है। जिससे शिला ऊंची रहे।

काले हिरण का चर्म, यज्ञोपयोगी चावल आदि के कूटने के समय में ओखली के नीचे रक्खा जाता है, उसे "कृष्णाजिन" कहते हैं वह खण्डित न हो, शिला और लोढ़ा, यज्ञोपयोगी सामग्री पेषण के लिए पत्थर के बनाये जायं। हुत हविष् के शेष भाग को, जो इडापात्र में रक्खा जाता है, "इडा" कहते हैं। "इडापात्र" में यजमानादि के लिए पांच भाग निकाल कर रक्खे जाते हैं। यह "इडापात्र" वा "इडापात्री" वरना वृक्ष की, १॥ हाथ की वा २४ अंगुल लम्बी, बीच में खुदी हुई और बीच में पतली होनी चाहिए। 'यही पञ्चावत्त इडा' कहलाती है। ब्रह्मा, होता, यजमान और उसकी धर्मपत्नी के लिए चौबीस चौबीस अंगुल के चतुष्कोण आसन-पटड़े बनाने चाहिएं। मुञ्ज=मूंज की, तीन लर वाली, दोनों भुजाओं के बीच का जितना परिमाण है उतनी लम्बी चौड़ी एक रस्सी बनाई जाती है। अध्वर्यु के कहने से "आग्नीध्र" इसे यजमानपत्नी को कटिदेश में पहरने के लिए देता है। इसी का नाम 'योक्त्र' है। बारह अंगुल लम्बी और आठ अंगुल चौड़ी, छ अंगुल बीच में खुदी हुई दो "पुरोडाशपात्री" हविष् के भरने की बड़ी पात्री (वर्त्तन) बनानी चाहिएं। बारह अंगुल लम्बा, दो अंगुल चौड़ा, अग्रभाग जिसका तेज हो ऐसा "श्रृतावदान" बनाना चाहिए। श्रृत-पके हुए पुरोडाश के अवदान-टुकड़े करने में यह काम देता है।

दर्पण के तुल्य-गोल वा चमस (सोमरस पीने का पात्र वा चम्मच) के तुल्य चौकोन "प्राशित्रहरण" नामक पात्र बनाना चाहिए, इसी में ब्रह्मा के लिए

हविर्भाग रक्खा जाता है। दोनों ओर खाने वाला, कंघी के आकार जैसा छ अंगुल का (या बारह अंगुल का) 'षडवत्त' पात्र बनाया जाता है जिसमें 'अग्नीध्र' के खाने को दो भाग रक्खे जाते हैं। आधे चन्द्रमा के समान बारह अंगुल का आठ अंगुल ऊँचा एक "अन्तर्धानकट" बीच में बनाना चाहिए। यजमान-पत्नियों के आहुति देते समय यह अन्तर्धानकट, अग्नि से बचाव करने के लिये खड़ा किया जाता है। अग्नि के अङ्गार संभालने के लिये चौबीस अंगुल लम्बा एक "उपवेश" नामक पात्र बनाना चाहिए। रस्सी मुञ्ज की यज्ञोपयोगिनी है। खैर के बारह बारह अंगुल लम्बे जिनका चार चार अंगुल का मस्तक हो और जिनका अग्रभाग पैना हो ऐसे खूंटे बनाने चाहियें। ये यज्ञमण्डप बनाने में और यज्ञोपयोगी गौओं के बांधने के काम में आते हैं। "यजमान-पूर्णपात्र" और "यजमानपत्नी-पूर्णपात्र" बारह बारह अंगुल लम्बे और चार अंगुल चौड़े तथा चार अंगुल गहरे खुदे हुए बनाने चाहियें। इन दोनों पात्रों में हुत हविष् का भाग यजमान और उसकी पत्नी के खाने के लिए रक्खा जाता है। पीपल की लकड़ी का आठ अंगुल गहरा और बारह अंगुल लम्बा "प्रणीतापात्र" बनाना चाहिए। हवन-कार्यार्थ अर्थात् कुशों से मार्जनाद्यर्थ जल इसी में से लिया जाता है। "आज्यस्थाली" घृत रखनेका पात्र बारह अंगुल लम्बा और बारह अंगुल ही ऊंचा बनवाना चाहिए। आज्यस्थाली जैसी ही चरुस्थाली हव्यान्न रखने की पात्री बनानी चाहिए। "अन्वाहार्य पात्र" ऐसा बनवाना चाहिए जिस में चार पुरुषों (ऋत्विजों) के लिए पर्याप्त भोजन समा जाय। यज्ञ होने के पश्चात् दक्षिणाग्नि में अन्वाहार्य पात्र रखकर अच्छी तरह पकाया हुआ भात आदि चारों ऋत्विज् इसी में से लेकर खाते हैं। अग्नि को पूर्व प्रदीप्त करने के लिये ढाक की वा अन्य योग्य वृक्ष (पीपल आदि) की समिधाएं रखनी चाहियें। हविष् पात्रों के नीचे रखने को और वेदी के चारों तरफ़ फैलाने को कुशों को विशेष रचना से रक्खा जाता है। इसी रचना का नाम "बर्हिः" है। ऋत्विजों के वरण के लिए सोने के कुण्डल और अंगूठी तथा सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहियें। यजमान और उसकी पत्नी को पहरने के लिए क्षौम अर्थात् रेशम के चार सुन्दर वस्त्र बनवाने चाहिएँ। जो यज्ञपात्र नहीं हैं वे यज्ञोपयोगी होने से यहां प्रसंगवशात् लिख दिये हैं। अन्य 'अभ्रि' आदि यज्ञोपयोगी दो वा तीन पदार्थों का याज्ञिक ग्रन्थों में स्वरूप बतला दिया है। जिनका स्वरूप नहीं बतलाया उनकी कल्पना कर लेना चाहिए। श्री १०८ स्वामीजी ने यज्ञपात्रों की आकृतियां अपनी "संस्कारविधि" के सामान्यप्रकरण में दी हैं, वे वहीं द्रष्टव्य हैं।

५

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः । (अर्थः) यजमान कहता है ।

*** ओमावसोः सदने सीद** । अर्थः—(वसोः) अग्नि वा यज्ञ के (सदने) स्थान में (आ सीद) बैठिए ।

इस वाक्य का उच्चारण करके ऋत्विज् को कर्म कराने की इच्छा से स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करे ।

ऋत्विगुक्तिः ।(अर्थः) ऋत्विक् कहता है ।

ओं सीदामि । (अर्थः) बैठता हूं ।

ऐसा कह कर जो उसके लिए आसन बिछाया हो उस पर बैठे ।

यजमानोक्तिः । (अर्थः) यजमान कहता है ।

अहमद्योक्तकर्मकरणाय भवन्तं वृणे । (अर्थः) मैं आज कहे हुए संकलिपत काम को करने के लिए आपको स्वीकार करता हूं ।

ऋत्विगुक्तिः ।(अर्थः) पुरोहित कहता है ।

वृतोस्मि । (अर्थः) मैं स्वीकार करता हूं ।

ऋत्विजों का लक्षण अच्छे विद्वान्, धार्मिक, जितेन्द्रिय, कर्म करने में कुशल, निर्लोभ, परोपकारी, दुर्व्यसनों से रहित, कुलीन, सुशील, वैदिकमत वाले, वेदवित्, एक दो तीन अथवा चार का वरण करें, जो एक हो तो उसको पुरोहित और जो दो हों तो ऋत्विक्, पुरोहित, तीन हों तो ऋत्विक्, पुरोहित और अध्यक्ष और जो चार हों तो होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा, इन में से कोई हो इनका आसन वेदी के चारों ओर अर्थात् होता का वेदी से पश्चिम आसन पूर्व मुख, अध्वर्यु का उत्तर आसन दक्षिण मुख, उद्गाता का पूर्व आसन पश्चिम मुख और ब्रह्मा का दक्षिण आसन उत्तर में मुख होना चाहिए (जैसा कि निम्न-लिखित सूत्र में पाया जाता है)

---

* " आसने उपविशति—आवसोः सदने० " गोभि० गृ० सू० प्र० १ । का० ४ । सू० १५ ।

आसन-व्यवस्था दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्येति ॥ पार० गृ० सू० १। का० २। क० परिशिष्टपदार्थक्रमे। और यजमान का आसन पश्चिम में और वह पूर्वाभिमुख अथवा दक्षिण में आसन पर बैठ के उत्तराभिमुख रहे और इन ऋत्विजों को सत्कारपूर्वक आसन पर विठाना, और वे प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठें और उपस्थित कर्म के विना दूसरा कर्म वा दूसरी बात कोई भी न करें और अपने अपने जलपात्रसे सब जन, जो कि यज्ञ करने को बैठे हों वे, इन मन्त्रों से तीन तीन आचमन करें। अर्थात् एक २ से एक २ वार आचमन करें। वे मन्त्र ये हैं:—

आचमन **ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ॥ १ ॥** इस से एक

अर्थ:—हे (अमृत) सुखप्रद जल ! तू (उपस्तरणम्) प्राणियों का आश्रयभूत (असि) है (स्वाहा) यह हमारा कथन शोभन हो *।

ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ॥ २ ॥ इस से दूसरा

अर्थ:—(अमृत) तू (अपिधानम्) निश्चय पोषक (असि) हो।

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा ॥ ३ ॥

(मानवगृह्यसूत्र प्रथमपुरुष ९ वां खण्ड) इससे तीसरा आचमन करे।

अर्थ:—(मयि) मुझ में (सत्यम्) सचाई (यशः) कीर्ति (श्रीः) शोभा (श्रीः) लक्ष्मी (श्रयताम्) स्थित हो ('ओम्' यह परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है, व्याकरण से इसका "रक्षकादि" अर्थ होता है), इसके पश्चात् नीचे लिखे मंत्रों द्वारा जल से अंगों का स्पर्श करे—

अंगस्पर्श **ओं वाङ्म ऽआस्येऽस्तु ॥** (पार० गृ० कां० १। क० ३। सू० २५) इस मंत्र से मुख।

अर्थ:—(मे) मेरे (आस्ये) मुख में (वाक्) वागिन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र।

अर्थ:—(मे) मेरे (नसोः) दोनों नासिका-छिद्रों में (प्राणः) प्राणवायु वा प्राणेन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो।

---

* यह प्रयोग-शैली जैसा कि ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में निरुक्त के प्रमाण से दरशाई गई है कोई जड़ से वार्ता वा उसकी उपासना करने के लिए नहीं, किन्तु उसके उपयोग विशेष से है।

ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों आँखें।

अर्थः—(मे) मेरे (अक्ष्णोः) नेत्र-गोलकों में (चक्षुः) चक्षुरिन्द्रिय स्थिर (अस्तु) हो।

ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों कान।

अर्थः—(मे) मेरे (कर्णयोः) दोनों कानों में (श्रोत्रम्) श्रवणेन्द्रिय सुस्थित (अस्तु) हो।

ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों बाहु।

अर्थः-(मे) मेरे (बाह्वोः) दोनों भुजाओं में (बलम्) बल शक्ति (अस्तु) हो।

ओं ऊर्वोर्मऽओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा।

अर्थः-(मे) मेरी (ऊर्वोः) जङ्घाओं में (ओजः) वेग (अस्तु) हो।

सूचना—नासिकाओं के दोनों छिद्रों को और दोनों नेत्रगोलकों को एक एक ही वार मन्त्र बोल कर स्पर्श किया जाता है, परन्तु कान और बाहुओं में पूर्व दक्षिण कान और बाहु को, फिर वामकर्ण और बाहु का स्पर्श करना चाहिए और मन्त्र दो दो वार बोलने चाहिएं। ऊरुद्वय के ऊपर एक साथ ही तथा सर्वाङ्ग के ऊपर एक साथ ही जल के हाथ से स्पर्श किया जाता है, ऐसी पूर्वाचार्यों की परिपाटी है। यह अङ्गस्पर्श जिसे गृह्यसूत्रकारों ने लिखा है, "अथर्ववेद कां० १६, अ० ७। सू०, ६०, ६१ ॥" के प्रमाण से किया जाता है:——

"वाङ्म आसन्नसोः प्राणश्चक्षुरक्ष्णोः श्रोत्रं कर्णयोः। अपलिताः केशा अशोणा दन्ता बहु बाह्वोर्बलम् ॥ १ ॥ऊर्वोरोजो जङ्घयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा। अरिष्टानि मे सर्वात्मानि भृष्टः। अथर्व० कां० १६। अ० ७। सू० ६०। तनूस्तन्वा मे भवेदन्तः सर्वमायुरशीय॥" अथर्व० कां० १६। अ० ७। सू० ६१ ॥ (अनुवादक)

ओं अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

इस मन्त्र से * दाहिने हाथ से जलस्पर्श करके सब शरीर में मार्जन करना, पूर्वोक्त समिदाचयन वेदी में करे।

* सजलहस्तेनेति पारस्करभाष्ये हरिहरः ॥ कां० १। कं० ३ ॥

अर्थः—(मे) मेरा (तनूः) देह और (मे तन्वाः) मेरे देह के (अङ्गानि) अवयव (सह) साथ ही (अरिष्टानि) अनुपहत—अबाधित (सन्तु) हों।

ओं भूर्भुवः स्वः *॥ (यह तीनों नाम परमात्मा के हैं) इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण †, क्षत्रिय वा वैश्य ‡ के घर से अग्नि ला अथवा घृत का दीपक जला उससे कपूर में लगा किसी एक पात्र में धर उसमें छोटी छोटी लकड़ी लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों से उठा यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़ कर अगले मन्त्र से अग्न्याधान करे, वह मन्त्र यह है:——

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥ य० अ० ३। मं० ५॥

अर्थः—हे (देवयजनि) विद्वान् लोग जिसमें यज्ञ करते हैं ऐसी (पृथिवी) पृथिवी (तस्यास्ते) प्रसिद्ध तेरी (पृष्ठे) पीठ पर (भूः, भुवः, स्वः) पृथिवी, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक में स्थित (भूम्ना द्यौरिव) नक्षत्रों के बाहुल्य से जैसे आकाश विराजमान हैं ऐसे ज्वालाबाहुल्य से विराजमान (वरिम्णा पृथिवीव) अपने बड़प्पन से जैसे पृथिवी सब का आधार है वैसे सर्वाश्रयभूत (अन्नादम्) यवादि अन्न को भस्म करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (अन्नाद्याय) शुद्ध भक्षण-योग्य अन्नोत्पत्ति के लिए (आदधे) मैं यजमान, स्थापित करता हूं। इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर उस पर छोटे छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर अगला मन्त्र पढ़ के व्यजन से अग्नि को प्रदीप्त करे ॥

ओं उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥ य० अ० १५। मं० ५४ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (उद्बुध्यस्व) प्रकट हो और (प्रति जागृहि) सब प्रकाशित हो (अयं त्वं च) यह यजमान और तू (इष्टापूर्त्ते) यज्ञादिकार्य और धर्मार्थ स्थान बनाना आदि शुभ कार्यों को (संसृजेथाम्) उत्पन्न करो। (अस्मिन् सधस्थे) इस अग्निसहित स्थान में तथा (अधि उत्तरस्मिन्) इससे

* भूर्भुवः स्वरित्यभिमुखमग्निं प्रणयन्ति, गोभि० गृ० सू० प्र० १। का० १। सू० ११॥
† आगाराद् ब्राह्मणस्य वा राजन्यस्य वा वैश्यस्य वा ॥ गोभि० गृ० सू० प्र० १। का० १। सू० ६॥
‡ वैश्यस्य बहुपशोर्गृहादग्निमाहृत्य ॥ पा० गृ० सू० का० १। क० २। सू० ३॥ (अनुवादक)

भी उत्तम स्थान में ईश्वर करें कि (विश्वे देवाः) सब विद्वान् लोग (यजमानश्च) और यजमान (सीदत) बैठें।

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा ऊपर लिखित पलाशादि की तीन लकड़ी आठ आठ अंगुल की घृत में डुबा उनमें से एक एक नीचे लिखे एक एक मन्त्र से एक एक समिधा को अग्नि में चढ़ावें। वे मन्त्र ये हैं:—

इससे पहली समिधा — **ओं अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय, स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे-इदन्न मम॥ १॥** * इससे एक।

अर्थः—हे (जातवेदः) अग्ने (अयम्, इध्मः) यह काष्ठ (ते, आत्मा) तेरा आधार है (तेन) इस काष्ठ से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व च) और बढ़। (अस्मान् च) और हमको (इत् ह) अवश्य ही (प्रजया) पुत्रादि से (वर्धय) बढ़ा और (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्न आदि से हमें (सम्, एधय) अच्छे प्रकार बढ़ा। (स्वाहा) यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो। (इदमग्नये, जातवेदसे, इदन्न, मम) यह दिया हुआ पदार्थ जातवेदा (उत्पन्न हुए सब पदार्थों के साथ सम्बन्ध करने वाले) अग्नि के लिए है, मेरे लिए नहीं॥ (आश्वलायन गृ० प्रथम अध्याय, कण्डिका १० वीं। सू० १२)

इससे दूसरी — **ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ १॥**

अर्थः—हे विद्वान् लोगो! तुम (समिधा) लकड़ियों से (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यत) सेवन किया करो और उस अग्नि को (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य समझ कर (घृतैः) घृतादिकों से (बोधयत) प्रकाशित करो। (अस्मिन्) इस अग्नि में (हव्या) सब प्रकार का शाकल्य (आ, जुहोतन) होमो—डालो॥१॥

इससे दूसरी — **सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे, स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ २॥**

इन दोनों मन्त्रों से दूसरी डाले॥

* "अयन्त इध्म०" इस मन्त्र से एक घृत की आहुति दी जाय और आगे के तीन मन्त्रों से तीन समिधाएं घृत में भिगोकर छोड़ी जावें। ऐसा कई विद्वान् मानते हैं। (अनुवादक)

अर्थः—हे मनुष्यो ! (सुसमिद्धाय) अच्छे प्रकार जलाए हुए (शोचिषे) दीप्ति वाले शुद्ध (जातवेदसे) सबों में विद्यमान (अग्नये) अग्नि के लिए (तीव्रं, घृतम्) सब प्रकार शुद्ध किए घृत को (जुहोतन) होमो ॥ २ ॥

इससे तीसरी तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचायविष्ठ्य, स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे-इदन्न मम ॥३॥
यजु० अ० ३ । मं० १ । २ । ३ ॥

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवे ॥ अर्थः—हे (अङ्गिरः) सब को प्राप्त होने वाले वा गमनशील अग्ने ! (तम्, त्वा) गार्हपत्य, आहवनीय आदि रूपसे प्रसिद्ध तुझको (समिद्भिः) समिधाओं से और (घृतेन) घृत से (वर्द्धयामसि) बढ़ावें । हे अग्ने ! (बृहत्) प्रकाश, छेदनादि गुणों के कारण बड़े और (यविष्ठ्य) अति बलवान् तुम (शोच) प्रकाशित होओ ॥ ३ ॥

इन मन्त्रों से समिदाधान करके होम का शाकल्य जो कि यथावत् विधि से बनाया हो, सुवर्ण, चांदी, कांसा आदि धातु के पात्र अथवा काष्ठपात्र में वेदी के पास सुरक्षित धरें पश्चात् उपरि लिखित घृतादि जो कि उष्ण कर छान पूर्वोक्त सुगन्धादि पदार्थ मिला कर पात्रों में रक्खा हो, उस (घृत वा अन्य मोहनभोगादि जो कुछ सामग्री हो) में से कम से कम ६ मासा भर अधिक से अधिक छटांक भर की आहुति देवे; यही आहुति का परिमाण है । उस घृत में से चमसा कि जिसमें ६ मासा ही घृत आवे ऐसा बनाया हो, भर के नीचे लिखे मन्त्र से पांच आहुतियां देनी ॥

इससे पांच घृताहुति ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम ॥ १ ॥

अर्थः—हे (जातवेदः) अग्ने (अयम्, इध्मः) यह काष्ठ (ते, आत्मा) तेरा आधार है (तेन) इस काष्ठ से (इध्यस्व) प्रदीप्त हो (वर्द्धस्व च) और बढ़ (अस्मान् च) और हमको (इत् ह) अवश्य ही (प्रजया) पुत्रादि से (वर्धय) बढ़ा और (पशुभिः) पशुओं से (ब्रह्मवर्चसेन) बड़ी कान्ति से (अन्नाद्येन) अन्नादि से हमें (सम्,एधय) अच्छे प्रकार बढ़ा (स्वाहा) यह हमारा दिया हुआ सुहुत हो।

तत्पश्चात् वेदी के पूर्व दिशा आदि में अञ्जलि में जल लेके चारों ओर छिड़-कावे उसके ये मन्त्र हैं:—

जल छिड़कना ओम् अदितेऽनुमन्यस्व ॥ * इस मन्त्र से दक्षिण से पूर्व ।

अर्थ:—हे (अदिते) अखण्डनीय परमात्मन् ! आप हमें अहिंसादि सम्पादनार्थ (अनुमन्यस्व) अनुकूल मति दीजिए ।

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥ इस से पश्चिम से उत्तर ।

अर्थ:—हे (अनुमते) अनुगत—व्यापक ज्ञानस्वरूप ! (अनु०) अनुकूल मति दीजिये ।

ओम् सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥ इससे उत्तर से पूर्व ।

अर्थ:—हे (सरस्वति) प्रशस्तज्ञानस्वरूप ! (अनु०) अनुकूल मति दीजिए ।

और—

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।
दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु ॥
यजु० अ० ३० । मं० १ ॥ (पूर्वोक्त आपस्तम्ब)

अर्थ:—हे (देव) प्रकाशक ! (सवितः) सर्वोत्पादक ईश्वर ! आप (भगाय) ऐश्वर्य के लिए (यज्ञम्) शिल्पादि विविध यज्ञों को (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए । और (यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक राजा को भी (प्र, सुव) उत्पन्न कीजिए । आप (दिव्यः) शुद्ध (गन्धर्वः) पृथिवी के धारक (केतपूः) विज्ञान के पवित्रकर्त्ता हो (नः) हमारी (केतम्) बुद्धि को (पुनातु) पवित्र करो और आप (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी हो अतः (नः) हमारी (वाचम्) वाणी को (स्वदतु) मधुर बनाओ । इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़कावे ।

इस के पश्चात् सामान्य होमाहुति गर्भाधानादि प्रधान संस्कारों में अवश्य करें, इस में मुख्य होम के आदि और अन्त में जो आहुति दी जाती हैं उन में से यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिणभाग में दूसरी आहुति देनी होती है उसका नाम "आघारावाज्याहुति" है। और जो

* यह मन्त्र आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २ । सू० ४ । पटल १ के हैं । (अनुवादक)

कुण्ड के मध्य में आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं, सो घृतपात्र में से स्रुवा को भर, अंगूठा और मध्यमा अनामिका से स्रुवा को पकड़ के—

आघारावाज्याहुति (१) ओम् अग्नये स्वाहा * ॥ इदमग्नये— इदन्न मम ॥ य० अ० २२ । मं० २७ ॥

अर्थः—(अग्नये) प्रकाशक परमात्मा के लिए वा भौतिक अग्नि के लिए (स्वाहा) सुहुत हो । इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग अग्नि में देवे ।

(२) ओं सोमाय स्वाहा ॥ इदं सोमाय–इदन्न मम ॥ य० २२-२८ ॥

अर्थः –(सोमाय) सोमरसादि के लिए वा परमात्मा की प्रीत्यर्थ सुहुत हो । इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधा पर आहुति देनी । तत्पश्चात्–

आज्याभागाहुति (१) ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये— इदन्न मम । य० अ० १८ । मं० २८ ॥

अर्थः—(प्रजापतये) प्रजाओं के पालक के लिए० ।

(२) ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ इदमिन्द्राय— इदन्न मम ॥ य० अ० २२ । मं० २७ ॥ अर्थ–(इन्द्राय) ऐश्वर्यसम्पन्न के लिए० ।

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति देनी उसके पश्चात् चार आहुति अर्थात् आघारावाज्यभागाहुति देके जब प्रधान होमअर्थात् जिस जिस कर्म में जितना २ होम करना हो, करके पश्चात् पूर्णाहुति पूर्वोक्त चार (आघारावाज्य-भागाहुति) देवें, पुनः शुद्ध किये हुए उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भर के प्रज्व-लित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें ।

---

* आपस्तम्ब गृ० सू० ख० २ । सू० ६ । भाषा में लिखे आहुतियों के नामादि भी आप-स्तम्ब, पारस्करादिकों में विद्यमान हैं । कहीं प्रकार-भेद है ।

ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ ओम् इन्द्राय स्वाहा ॥ ओम् अग्नये स्वाहा ॥ ओं सोमाय स्वाहा ॥

अयमेव पाठक्रमो गृह्यसूत्रानुगुणत्वात्समञ्जसः प्रतिभाति । (अनुवादकः)

६

व्याहृति आहुतियां

(१) ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्न मम ॥

अर्थः—अग्निरूप ईश्वर के लिए० ।

(२) ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥

अर्थः—वायु-व्यापक ईश्वर के लिए० ।

(३) ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय-इदन्न मम ॥

अर्थः—आदित्यवत् प्रकाशक ईश्वर के लिए० ।

(४) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्नि-वाय्वादित्येभ्यः, इदं न मम ॥ पार० का० १ । कं० ५ । सू० ३, ४ ॥

अर्थः—पूर्वोक्त सर्वगुणसम्पन्नों के लिए० ।

ये चार घी की आहुति देकर स्विष्टकृत् होमाहुति एक ही है, यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिये, उसका मन्त्रः—

स्विष्टकृत होमाहुति

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम् । अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे । अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे, सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते-इदन्न मम ॥ शत० का० १४ । अ० ८ । प्र० ७ । क० ५ ॥

अर्थ—(यत्) जो (अस्य, कर्मणः) इस कर्म के विषय में (अत्यरीरिचम्) मैंने अधिक किया (यद्वा) अथवा (न्यूनम्, इह) यहां थोड़ा (अकरम्) किया गया । (सर्वं स्विष्टम्) सब इष्ट वस्तुओं को (विद्वान्) जानने वाला और (स्विष्टकृत्) अच्छे इष्ट पदार्थों का करने वाला (अग्निः) परमात्मा (तत्) उस सब को (मे) मेरे लिये (सुहुतम्) अच्छे प्रकार हुत (करोतु) करे । और (स्विष्टकृते) शोभनयज्ञसम्पादक (सुहुतहुते) सुहुत को ग्रहण करने वाले

(कामानाम्) इष्यमाण (सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनाम्) सर्व प्रायश्चित्त की आहुतियों को (समर्द्धयित्रे) बढ़ाने वाले (अग्नये) भौतिक अग्नि के लिए, (सुहुत हो) हे ईश्वर ! (नः) हमारे (सर्वान् कामान्) सब अभिलषित पदार्थों को (समर्द्धय) बढ़ाओ ।

इससे एक आहुति करके " प्राजापत्याहुति " नीचे लिखे मन्त्र को मन में बोल के देनी चाहिए।

प्राजापत्याहुति — ओं प्रजापतये स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये-इदन्न मम ॥

अर्थः—प्रजाओं के पालक अर्थात् ईश्वर के लिए सुहुत हो।

इससे मौन * हो करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवे, परन्तु नीचे लिखी आहुतियां चौल †, समावर्तन और विवाह में मुख्य हैं, उनके चार मन्त्र ये हैं—

प्रधानहोम-संबन्धी आज्याहुति — (१) ओं भूर्भुवः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्ज्जमिषं च नः । आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥१॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (आयूंषि) जीवनों को (पवसे) रक्षा करता है । तू (नः) हमारे लिए (ऊर्जम्) बल को (च) और (इषम्) अन्नादि को (आसुव) प्राप्त करा । हमारे (दुच्छुनाम्) राक्षस ‡ विषैले दृश्य तथा अदृश्य जीवजन्तुओं को हम से (आरे) दूर (बाधस्व) पीड़ित कर ॥ १ ॥

(२) ओं भूर्भुवः स्वः । अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः । तमीमहे महागयं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम ॥ २ ॥

अर्थः—(अग्निः) अग्नि (ऋषिः) सर्वत्र व्याप्त है (पवमानः) शोधक है (पाञ्चजन्यः) चारों वर्णाश्रमों और तदितर जन एवं पांचों प्रकार के मनुष्यों में कार्यसाधक है (पुरोहितः) ऋत्विगादिकों से अपने सम्मुख इष्टसिद्धि के लिए रक्खा जाता है (तम् महागयम्) उस विद्वानों से स्तुति के योग्य अग्नि से हम (ईमहे) धनादि की याञ्चा करते हैं ॥ २ ॥

* तूष्णीं द्वितीये उभयत्र। आश्वलायन गृ० प्र० १ । कं० ९ । सू० ८ । ऐसे ही मौन होकर आहुति देने का अन्यत्र भी विधान है । † मुण्डन । ‡ रोग के सूक्ष्माणु ॥

(३) ओं भूर्भुवः स्वः । अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम् । दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा ॥ इदमग्नये पवमानाय–इदन्न मम ॥३॥

ऋ० मं० ९ । सू० ६६ । मं० १९ । २० । २१ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) अग्ने ! तू (स्वपाः) सुन्दर काम करने वाला है (अस्मे) हम में (सुवीर्यम्) अच्छे बल वाले (वर्चः) तेज को (पवस्व) प्राप्त कराओ । (मयि) मुझ में (रयिम्) धनादि को और (पोषम्) गवादि की पुष्टि को (दधत) धारण करो ॥ ३ ॥

(४) ओं भूर्भुवः स्वः । प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा ॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ऋ० मं० १० । सू० १२१ । मं० १० ॥

अर्थः—हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस जिस पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस उस की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ४ ॥

इन से घृत की चार आहुति करके " अष्टाज्याहुति " निम्नलिखित मन्त्रों से सर्वत्र मङ्गलकार्यों में आठ आठ आहुति देवें परन्तु किस किस संस्कार में कहां कहां देनी चाहिए यह विशेष बात उस उस संस्कार में लिखेंगे ।

अष्टाज्याहुति

*ओं त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेडोऽव यासिसीष्ठाः । यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा । इदमग्नीवरुणाभ्याम्–इदन्न मम ॥ १ ॥

* पार० का० १ । क० २ । सू० ८ । (अनुवादक)

अर्थः— हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! तू (विद्वान्) हमारे सब कार्य्यों को जानने वाला है (देवस्य) दिव्य गुणों वाले (वरुणस्य) परमात्मा के (हेलः) अनादर से (त्वम्) तू (नः) हमको (अवयासिसीष्ठाः) पृथक् रख, अर्थात् आप ऐसी कृपा करें जिस से हम ईश्वर की आज्ञानुकूल चलें (यजिष्ठः) तुम यज्ञ करने वालों में श्रेष्ठ हो और (वह्नितमः) हविरादि उपयोगी पदार्थों के प्राप्त कराने वाले हो और (शोशुचानः) अत्यन्त तेज वाले हो अतः तुम (अस्मत्) हम से (विश्वा, द्वेषांसि) सब द्वेष के कारण पापों को (प्रमुमुग्धि) अच्छी तरह से हटाओ ॥ १॥

ओं स त्वन्नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ । अवयक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृडीकं सुहवो न एधि स्वाहा ॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम ॥ २ ॥ ऋ० मं० ४ । सू० १ । मं० ४ । ५ ॥

अर्थः— हे (अग्ने) प्रकाशमान राजन् ! (स त्वम्) पूर्वोक्त गुणों वाला तू (ऊती) अपने आगमन से (नः) हमारा (अवमः) रक्षक (भव) हो और (अस्याः, उषसः) इस प्रभातकाल के (व्युष्टौ) अग्निहोत्रादि कामों में (नेदिष्ठः) निकट हो (नः) हमारे (वरुणम्) आवरण करने वाले पाप को (अवयक्ष्व) नष्ट करो और (रराणः) यज्ञ करने के लिये अत्यन्त फल देने वाले आप (मृडीकम्) सुख करने वाले इस हविः-शेषभाग को (वीहि) स्वीकार कीजिये और (नः) हमारे (सुहवः) सुन्दर आह्वान से युक्त (एधि) हो ॥ २ ॥

ओं इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय । त्वामवस्युरा चके स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ३ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २५ । मं० १९ ॥

अर्थः— हे (वरुण) प्रशंसनीय राजन् * ! (मे) मेरे (इमम्, हवम्) इस स्तुतिसमूह को (श्रुधि) आप सुनें (च) और (अद्य) आज यज्ञ दिन में (मृडय) हम सबको सुखी करें (अवस्युः) अपनी रक्षा की इच्छा करता हुआ मैं (त्वाम्) आपकी (आ, चके) संमुख स्तुति करता हूं ॥ ३ ॥

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय-इदन्न मम ॥ ४ ॥ ऋ० मं० १ । सू० २४ । मं० ११ ॥

---

* इस स्थान में ईश्वर वा विद्वान का भी ग्रहण हो सकता है । (अनुवादक)

अर्थः—हे (वरुण) जगदीश्वर ! (ब्रह्मणा) वेद से (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (तत्) उस आयु को (त्वा) तुझ से (यामि) चाहता हूं (तत्) उसी आयु को (हविर्भिः) शाकल्य आदि से (यजमानः) यज्ञ करने वाला (आशास्ते) चाहता है । (इह) इस यज्ञादि कर्म में (अहेडमानः) हमारा अनादर करता हुआ तू (बोधि) हमारी इच्छा को समझ । हे (उरुशंस) बहुतों से स्तुति करने के योग्य (नः) हमारे (आयुः) जीवन को (मा, प्रमोषीः) मत नष्ट कर ॥ ४ ॥

*** ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः । तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः—इदन्न मम ॥ ५ ॥**

अर्थः—हे (वरुण) स्वीकार योग्य जगदीश्वर ! (ये, ते) जो वे (शतम्) सैकड़ों और (ये, सहस्रम्) जो हज़ारों (यज्ञियाः) यज्ञसम्बन्धी (महान्तः) बड़े (पाशाः) प्रतिबन्धक रुकावट (वितताः) फैले हुए हैं (तेभिः) उनसे (नः) हमको (अद्य) आज (सविता, उत, विष्णुः) सर्वोत्पादक और व्यापक आप और (विश्वे, स्वर्काः, मरुतः) सब अच्छे पूजनीय देवता–विद्वान् लोग (मुञ्चन्तु) छुड़ावें ॥ ५ ॥

ओं अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्यमित्त्वमयासि । अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥ ६ ॥

अर्थः—हे (अग्ने) भौतिक अग्ने ! (त्वम्) तुम (अयाः) बाहर और भीतर सर्वत्र स्थिर (असि) हो (च) और (अनभिशस्तिपाः) जिनके दोष न रहे ऐसे प्रायश्चित्तयोग्य पुरुषों के पालक हो (च) और (त्वम्) तुम (अया, असि) कल्याणकारक हो यह बात (सत्यम्, इत्) सच ही है, हे (अयाः) कल्याणकारक अग्ने ! तुम (अयाः) हमारे आश्रय होकर (यज्ञम्) यज्ञ के साधन चरू आदि को जलादि देवताओं के लिये (वहासि) ले जाते हो इसलिये (नः) हमारे लिये (भेषजम्) दुःखनाशरूप सुख को (धेहि) देओ ॥ ६ ॥

---

* पारस्करादि संमत, ये दोनों वाक्यान्तरीय मन्त्र हैं ।

ओं उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसोऽदितये स्याम स्वाहा॥ इदं वरुणायाऽऽदित्यायाऽदितये च–इदन्न मम ॥७॥ ऋ० मं० १। सू० २४। मं० १५॥

अर्थः—हे (वरुण) स्वीकार करने योग्य ईश्वर! (अस्मत्) हम लोगों से (अधमम्) छोटे और (मध्यमम्) बिचले दर्जे के (उत्) और (उत्तमम्) ऊँचे दर्जे के (पाशम्) बन्धन को (व्यवश्रथाय) अच्छे प्रकार नष्ट कीजिये (अथ) और हे (आदित्य) अविनाशी ईश्वर! (तव, व्रते) तेरे आज्ञापालनरूपी व्रत में स्थित (वयम्) हम लोग (अनागसः) अपराधरहित होकर (अदितये) मुक्ति—सुख के लिये (स्याम) नियत होवें॥ ४॥

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳहिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा॥ इदं जातवेदोभ्यां—इदन्न मम॥८॥ यजु० अ० ५। मं० ३॥

अर्थः—(नः) हम लोगों के बीच में (अरेपसौ) पापरहित (समनसौ) समान मन वाले अर्थात् एक दूसरे के सहायक (सचेतसौ) समान बुद्धि वाले स्त्री पुरुष (भवतम्) हों और वे दोनों (यज्ञम्) यज्ञ का (मा, हिंसिष्टम्) लोप न करें और (मा, यज्ञपतिम्) यज्ञों के पालक को भी पीड़ा न पहुंचावें। (अद्य) आज यज्ञ के दिन, ऐसे ही स्त्री पुरुष (नः) हमारे लिए (शिवौ) शान्तरूप (भवतम्) हों॥ ८॥

सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे, न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे, किन्तु मध्यतया जैसा जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मंत्र तो अवश्य पढ़ लेवे, यदि कोई कार्यकर्त्ता जड़ मंदमति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज मन्त्रोच्चारण करे और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे, पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति स्रुवा को घृत से भर के करे:—

पूर्णाहुति

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा॥ अर्थः—(सर्वम्) सब (वै) निश्चयरूप से (पूर्णम्) पूर्ण हो।

इस मंत्र से एक आहुति देवे ऐसे दूसरी और तीसरी आहुति दे के जिसको दक्षिणा देनी हो देवे वा जिसको जिमाना हो जिमा, दक्षिणा दे के सब को विदा कर स्त्री पुरुष हुतशेष–घृत, भात वा मोहनभोग को प्रथम जीम के पश्चात् रुचिपूर्वक उत्तमान्न का भोजन करें।

मंगलकार्य (वामदेव्यगान)

गर्भाधानादि संस्कारपर्यन्त पूर्वोक्त और निम्नलिखित सामवेदोक्त वामदेव्य गान* अवश्य करें। वे मन्त्र ये हैं:—

ओं भूर्भुवः स्वः। कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता ॥ १ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। कस्त्वा सत्यो मदानां मꣳहिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु ॥ २ ॥ ओं भूर्भुवः स्वः। अभीषुणः सखीनामविता जरितॄणाम्। शतम्भवास्यूतये ॥ ३ ॥ महावामदेव्यम्—काऽ५या। नश्चा३ इत्रा३ आभुवात्। ऊ। ती सदावृधः सखा। औ३ होहाइ। कया२३ शचाइ। ष्ठयौ-हो३। हुम्मा२। वा२ तो३ऽ५हाइ ॥ (१) ॥ काऽ५स्त्वा। सत्यो३मा३दा-नाम्। मा। हिष्ठोमात्सादन्धः। सा। औ३होहाइ। दृढा२३ चिदा। रुजौहो३। हुम्मा२। वाऽ२सो३ऽ५हायि ॥ (२) ॥ आऽ५भी। षुणा३ः सा३खीनाम्। आ। विता जरायितॄ। णाम्। औ२३ हो हायि। शता२३म्भवा। सियौहो३। हुम्मा२। ताऽ२यो३ऽ५हायि ॥ ३ ॥ साम० उत्तरार्चिके। अध्याये १। खं० ४। मं० ३३। ४। ५ ॥

वामदेव्य गान

अर्थ—(सदा वृधः) सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होने वाला (चित्रः) पूजनीय (सखा) मित्रभूत, इन्द्र-परमात्मा (कया, ऊती) कैसी रक्षा से और (कया, वृता) कैसे वर्ताव से (नः) हमारे (आ, भुवत्) संमुख हो ? (उत्तर) (शचिष्ठया) श्रेष्ठबुद्धियुक्त से। परमात्मा ने इस मन्त्र में प्रश्नोत्तररूप से जीवों के प्रति यह उपदेश किया है कि परमात्मा की अनुकूलता, अच्छे बुद्धियुक्त वर्ताव और अपनी आप रक्षा–चौकसी के विना नहीं हो सकती ॥ १ ॥

* अपवृक्ते कर्मणि वामदेव्यगानम्, शान्त्यर्थं शान्त्यर्थम्। गोभि० गृ० सू० प्र० १। का० ९। सू० २९ ॥ (अनु०)

(दृढा, चित्) दृढ़ भी (वसु) शत्रुओं के क़िले आदि को (आरुजे) तोड़ने को (मदानाम्) हर्षकारी वस्तुओं के बीच में (मंहिष्ठः) सर्वोत्तम (सत्यः) यथार्थ, प्रसन्न करने वाला (कः) कौन है जो हे जीव ! (त्वा) तुझे (मत्सत्) हर्षित करे ? (उत्तर)-(अन्धसः) केवल अन्न का रस । पुष्टिकारक और शत्रुओं के बल का नाशक अन्न से बढ़कर कोई नहीं, इस बात का उपदेश प्रश्नोत्तर रूप से इस मन्त्र में है ॥ २ ॥ *

हे परमात्मन् ! तुम (सखीनाम्) समान प्रसिद्धि वाले साधारण प्राणियों के और (जरितॄणाम्) ज्ञानादि से वृद्ध असाधारण प्राणियों के (अविता) रक्षक हो अतः तुम (नः, शतम्) हम सैकड़ों प्राणियों की (ऊतये) रक्षा के लिए (सु, अभि, भवासि) अच्छे प्रकार, अभिमुख होओ ॥ ३ ॥

यह वामदेव्यगान होने के पश्चात् गृहस्थ स्त्री पुरुष कार्यकर्त्ता सद्धर्मी लोकप्रिय परोपकारी सज्जन विद्वान् वा त्यागी पक्षपातरहित संन्यासी जो सदा विद्या की वृद्धि और सब के कल्याणार्थ वर्तने वाले हों उनको नमस्कार, आसन, अन्न, जल, वस्त्र, पात्र, धन आदि के दान से उत्तम प्रकार से यथासामर्थ्य सत्कार करें पश्चात् जो कोई देखने ही के लिये आये हों उनको भी सत्कारपूर्वक विदा करदें, अथवा जो संस्कार क्रिया को देखना चाहें वे पृथक् २ मौन करके बैठे रहें कोई बात चीत हल्ला गुल्ला न करने पावें, सब लोग ध्यानावस्थित प्रसन्नवदन रहें विशेष कर्मकर्त्ता और कर्म कराने वाले शान्ति, धीरज और विचारपूर्वक, क्रम से कर्म करें और करावें । यह सामान्यविधि अर्थात् सब संस्कारों में कर्त्तव्य है ।

इति सामान्यप्रकरणम्

——:०:——

* मनुष्य का स्वाभाविक भोजन अन्न है, यह उपदेश दिया गया है ।

सामान्यप्रकरण व्याख्याभाग

यज्ञ-देश

उपद्रवरहित ऐसे स्थान में यज्ञ करना चाहिये जिसकी वायु तथा भूमि पवित्र हो। यद्यपि पुराने समय में मकानों की रचना इस प्रकार की होती थी कि उनके आस पास आज कल के बँगलों की न्याई कुछ न कुछ खुली भूमि रहे अथवा जैसे दक्षिणी लोग मकान के द्वार के बाहर कुछ खुली भूमि रखते हैं। उत्तर हिन्द में मकानों के बीच में आंगन (खुली जगह) प्राय: होती है और कभी कभी इस आंगन में नीम का पेड़ लगाते हैं। आज कल कई जगह किराये के लोभ से जो मकान बनाये जाते हैं उनमें कहीं भी खुली जगह रखने की मर्यादा नहीं रही। ऐसी अवस्था में हवन कोठरियों और कमरों ही में करना पड़ता है। जिस मकान के चारों ओर खुली जगह तथा बीच में आंगन है, वह मकान सर्वोत्तम प्रकार का होने से यज्ञ का उत्तम स्थान हो सकता है। वेदमन्त्रों में मकान बनाने का जो विधान है—जैसे गृहाश्रम प्रकरण के अन्तर्गत शालाकर्मविधि में पाया जाता है उससे यही सिद्ध होता है कि मकान के चारों ओर द्वार हों और ये तभी हो हो सकते हैं जब कि चारों ओर खुली जगह हो। यज्ञ का त्याग करने से लोग मकानों के बीच में आंगन और चारों ओर खुली जगह रखना भूल रहे हैं।

यज्ञशाला कच्ची भूमि की इसलिये बनाई जाती है कि भिन्न २ संस्कारों के अवसरों तथा अपनी शक्ति के अनुसार न्यूनाधिक-आहुतियों के लिये, तदनुसार छोटा वा बड़ा हवन-कुण्ड बनाया जा सके। यदि एक सहस्र आहुतियें किसी समय देनी अभीष्ट हों तो यज्ञ-कुण्ड उसी के परिमाण में बनाना होगा परन्तु दूसरे समय यदि लक्ष आहुतियें देने का सामर्थ्य हो गया तो उस छोटे से हवन-कुण्ड से काम नहीं चल सकेगा। चूना, गच्च, पत्थर व पक्की ईंटों की यज्ञशाला बनाने में कुण्ड का प्रमाण बदलते समय उसको तोड़ने आदि में निस्सन्देह बहुत द्रव्यहानि होगी। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि मट्टी से बना हुआ स्थल गरमियों में ठण्डा और सरदियों में पत्थरादि की अपेक्षा अधिक अनुकूल रहता है।

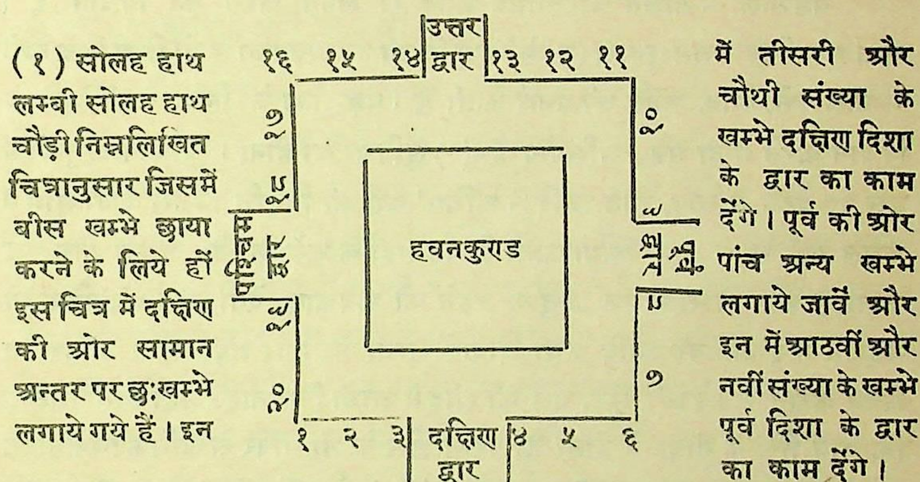
यज्ञ-शाला

यज्ञशालाविषयक लेख पारस्कर गृह्यसूत्र के गदाधर भाष्य में देखना चाहिये। (पारस्कर गृ० कं० ४। का० १)

मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपो गृहवामतः। कार्यः षोडशहस्तो वा न्यूनहस्तो दशावधिः॥ स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदीमध्ये प्रतिष्ठिता।

इत्यादि सूत्र वाक्यों के आधार से संस्कारविधि में यज्ञशाला का विधान किया गया है, उसके भेद और प्रकार यह हैं:—

(१) सोलह हाथ लम्बी सोलह हाथ चौड़ी निम्नलिखित चित्रानुसार जिसमें बीस खम्भे छाया करने के लिये हों इस चित्र में दक्षिण की ओर सामान अन्तर पर छः खम्भे लगाये गये हैं। इन

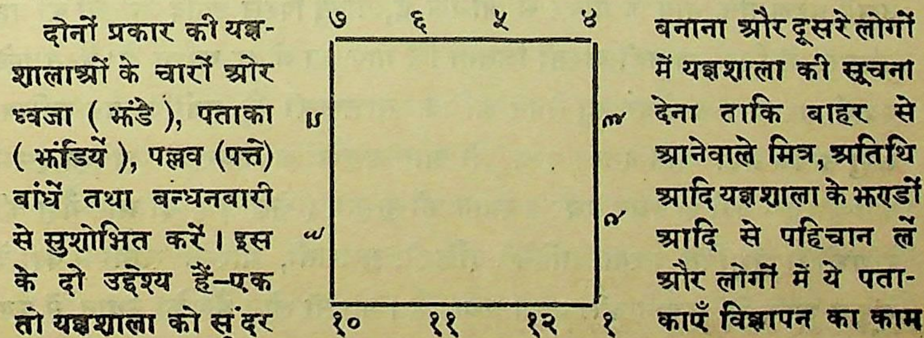


में तीसरी और चौथी संख्या के खम्भे दक्षिण दिशा के द्वार का काम देंगे। पूर्व की ओर पांच अन्य खम्भे लगाये जावें और इन में आठवीं और नवीं संख्या के खम्भे पूर्व दिशा के द्वार का काम देंगे।

इसी प्रकार तेरह–चौदह संख्या के खम्भे उत्तर के द्वार तथा अठारह–उन्नीस संख्या के खम्भे पश्चिम द्वार का काम देंगे। सोलह हाथ लम्बी और सोलह हाथ चौड़ी और दश हाथ ऊँची यज्ञशाला को एक अच्छा शामियाना समझना चाहिये, परन्तु यह शामियाना चारों ओर से खुला होगा खम्भों के ऊपर फूस आदि से छत्त करनी चाहिये।

(२) आठ हाथ लम्बी और आठ हाथ चौड़ी यज्ञशाला बनानी हो तो उसमें बारह खम्भे होने चाहियें, जिसका चित्र उसी नियम के अनुसार निम्न प्रकार है:—

दोनों प्रकार की यज्ञशालाओं के चारों ओर ध्वजा (झंडे), पताका (झंडियें), पल्लव (पत्ते) बांधें तथा बन्धनवारी से सुशोभित करें। इस के दो उद्देश्य हैं–एक तो यज्ञशाला को सुंदर



बनाना और दूसरे लोगों में यज्ञशाला की सूचना देना ताकि बाहर से आनेवाले मित्र, अतिथि आदि यज्ञशाला के झण्डों आदि से पहिचान लें और लोगों में ये पताकाएँ विज्ञापन का काम

दें। खम्भों के ऊपर छत्त डालने का उद्देश्य धूप, धूल, वर्षा आदि से वेदी तथा मनुष्यों की रक्षा करना है। पत्ते जो रस्सी में लगाये जाते हैं उस को बन्धनवारी कहते हैं, परन्तु यह बन्धनवारी काग़ज़ आदि की नहीं किन्तु आम, अशोक, जामन व मौलसरी आदि के पत्तों की होनी चाहिये।

यज्ञशाला में मार्जन और गोमय आदि से लेपन करने का विधान है। मार्जन के लिये उत्तम बुहारी (मार्जनी) आदि की आवश्यकता है जो भिन्न भिन्न देशों में घास पत्ते, सींक आदि की बनाई जाती है। यज्ञशाला के लिये कच्ची भूमि के विधान करने में दो मुख्य अभिप्राय हैं-(१) सुविधा का होना। (२) सर्व ऋतुओं में इस पर बैठने से ताप, शीत आदि से अधिक कष्ट की निवृत्ति। जिस कच्ची भूमि में केवल मट्टी से ही लेपन किया जाता है वह मट्टी के रूखेपन के कारण शीघ्र फट जाता है और पिस्सू नामक जन्तु के रहने को अवकाश देता है। इंजीनियरिंग महकमे में इंजीनियर आदि कच्ची दीवारों तथा फर्शों पर मट्टी तथा गोबर का लेपन कराते हैं। हाथी, ऊँट, गधे की लीद में उतनी चिकनाहट नहीं होती जितनी कि गाय भैंस के गोबर में होती है, परन्तु भैंस के भी गोबर से अधिक चिकनाहट तथा मट्टी को पकड़ने की शक्ति गाय के गोबर में है। भैंस के गोबर का लेपन गाय के गोबर के लेपन से कम टिकाऊ देखा गया है, इसलिये मिट्टी के साथ गोमय मिलाकर लेपन करना उपयोगी है। गुजरात देश में सब लोग इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि गाय के गोबर में भैंस के गोबर से एक विशेष गुण यह है कि जहां गाय के गोबर का लेपन किया जाता है वहां 'चांचर' (पिस्सू) अधिक नहीं आते परन्तु भैंस के गोबर के लेपन से पिस्सू बहुत बढ़ जाते हैं, इसलिये गाय, बैल का गोबर अधिक उत्तम है। काठियावाड़ में घोड़े की लीद प्रायः दीवार बनाने या मिट्टी के लेपन को अधिक पकड़ने के उपयोग में लाई जाती है और उसमें ग्रहणशक्ति गाय के गोबर से अधिक है, परन्तु पिस्सू आदि जन्तुओं को वह उत्तमता से निवारण नहीं करती जितना कि गाय का गोबर करता है। बैठने वाले स्थानों पर गाय के गोबर का लेपन अधिक लाभकारी है, क्योंकि यह अधिक जन्तु उत्पन्न नहीं होने देता। गन्ध भी और पशुओं के गोबर की अपेक्षा इसमें कम ही है। वेदी के इधर उधर के स्थान को कुंकुम (रोली) हल्दी और मैदा की रेखाओं से सुभूषित करना चाहिये। दक्षिणी, गुजराती, पारसी लोगों में वेदी के कुंकुम आदि से सजाने की बहुत प्रथा है। पारसी लोग मैदे के स्थान में एक

प्रकार की श्वेत पिसी हुई खड़िया काम में लाते हैं और रेखा शृङ्गार को गुजराती लोग साथिया पूरना कहते हैं। वेदी के अतिरिक्त पारसी लोग अपने घर के दरवाज़ों और सीढ़ियों को शृङ्गारित करते हैं। जो रङ्ग विरंगी रेखायें वेदी के सजाने के लिये खैंची जायँ, उनके इरद गिरद एक अंगुल चौड़ी हल्दी की रेखा चारों ओर खैंचनी चाहिये क्योंकि चींटियें (पिपीलिका) हल्दी से हटती हैं। और इसलिये हवनकुण्ड में नहीं जा सक्तीं।

रेखाओं द्वारा केवल फूल, पत्ते के चित्र ही होने चाहियें 'ओ३म्' अथवा मन्त्र लिखने की आवश्यक्ता नहीं और किसी मनुष्य, पशु, पत्ती आदि प्राणी तथा नवग्रहादि के चित्र की भी आवश्यकता नहीं। मुख्य करके चींटी आदि को शृ-ङ्गारित रेखाओं द्वारा वेदी से दूर रखना ही प्रयोजन है। इसीलिये संस्कारविधि में हल्दी, कुंकुम और मैदा से रेखाएँ खैंचने का विधान है। कुंकुम (रोली), हल्दी, चूना और नींबू के रस की बनती है और इसीलिये इससे भी चींटियां हटती हैं। मैदा को चींटियें खाती हैं उसका यहां रखना भी एक अभिप्राय रखता है। वेदी के बा-हर की ओर की जो रेखाएँ हों, वे हल्दी की होनी चाहियें। उसके पीछे अन्दर की ओर आने वाली दूसरी रेखायें वा चित्र रोली के और तीसरी रेखा वेदी के निकट आटे वा मैदे की होनी चाहिये, जिससे कि चींटियां हल्दी और रोली की रे-खाओं से पीछे हटी रहें और यदि कोई हठीली चींटी दैवयोग से इन दोनों रेखाओं के पार आजावे तो आटे वा मैदे के खाने के लोभ में उसी रेखा तक रह जावे और कुण्ड में न जा सके। कई लोग हल्दी, कुंकुम और आटा, इन से रेखाएँ न खींचकर नाना प्रकार के दूसरे चमकते रँग बाज़ार से ले आते हैं, परन्तु ऐसा कभी न करना चाहिये।

यज्ञकुण्ड का परिमाण

खुली भूमि पर लकड़ियों का ढेर लगा कर, उस में घी और चरु डालने से लकड़ी और सामग्री जल तो सकती है परन्तु वायु के अधिक लगने से, एक तो बहुत जल्दी जल जावेगी दूसरे आग चारों ओर फैल जावेगी, जिससे लोगों के वस्त्र और शरीर जलने का भय है। तीसरे यह कि घृतादि पदार्थों का अधिकांश बाहर निकल कर व्यर्थ जावेगा; अतः वेदी अथवा कुण्ड बनाने की आवश्यक्ता है, जो उक्त दोषों को भली प्रकार निवारण कर सके। जो लोग तापने के लिये

कोयले जलाते हैं, वे भी नाना प्रकार की अंगीठियें इसीलिये बनाते हैं, कि कोयलों की अग्नि, सुरक्षित रहती हुई अधिक समय तक बनीरहे।

यज्ञकुण्ड कई प्रकार के बनाये जा सकते हैं जैसे-(१) कूपवत्, गोलाकार। (२) टीन के डब्बे की न्याईं, ऊपर नीचे से समचौरस। (३) सन्दूक अथवा पेटी की न्याईं लम्बा चौरस।

कूपाकार हवनकुण्ड बनाने में समिधा और सामग्री का जलना ठीक ठीक नहीं होसकता। टीन के डब्बे के आकार वाले में कोनों में सामग्री का जमाव हो जाने सेजलने की व्यवस्था ठीक नहीं रहसकती। सन्दूक के आकार के कुण्ड होने में आमने सामने के होता अग्नि के मध्य-भाग से अधिक निकट हो जावेंगे जिससे उनको अधिक ताप लगेगा। अब जो कि तालाब के आकार का हवनकुण्ड है वह सब से उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह हवनकुण्ड चतुष्कोण इस प्रकार बनाना चाहिये कि उसका तल चारों ओर चार चार अंगुल का हो तो ऊपर को क्रमशः बढ़ते हुए चारों ओर सोलह सोलह अंगुल हो और गहराई अर्थात् तल से डोरी सीधी खड़ी की जावे तो वह सोलह अंगुल होनी चाहिये।

"संस्कारविधि" में एक लक्ष, दो लक्ष, पचास हज़ार, पच्चीस हज़ार, दश हज़ार, पांच हज़ार घृताहुतियें देने के हिसाब से विशेष परिमाण के हवनकुण्ड बनाने का विधान है। उस के आगे चल कर घृत मोहन-भोग अथवा खीर की आहुति देने की, दशा में उसके दुगने से कुछ अधिक हवनकुण्ड बनाने का विधान किया है, जितना कि केवल घृत आहुति के लिये चाहिये था। उदाहरणार्थ २५०० घृताहुतियां देनी हों तो उक्त नियमानुसार ऐसा हवनकुण्ड बनाना चाहिये जिसका तल सवा चार अङ्गुल और गहराई तथा ऊपर के चारों कोनों की लम्बाई पौन पौन हाथ हो। यदि इसके साथ मोहनभोग आदि की आहुति देनी हों, तो उस दशा में यदि पौन हाथ समचौरस का दूना किया जाय तो डेढ़ हाथ समचौरस होता है, किन्तु " संस्कारविधि " में दो हाथ गहरा चौड़ा समचौरस कुण्ड बनाने का विधान है, जिसका अभिप्राय यह है कि घृत और चरु की मिली हुई अवस्था में उसके दुगने से कुछ अधिक परिमाण का कुण्ड चाहिये, जो केवल घृताहुति के लिए बनाना था। नैमित्तिक यज्ञों के हवनकुण्डों की बनावट में जो पांच पांच अङ्गुल की मेखला यज्ञशाला की भूमि से ऊपर को बनाने को लिखा है, उसका प्रयोजन विशेष कर यज्ञकर्त्ता मनुष्यों को

आंच का अधिक ताप न लगना तथा हविष्य अन्न को भूमि पर गिरने से रोकना है कात्यायन गृह्यसूत्र में हविष्य अन्न की रक्षा के लिये यह मेखला बाहर की ओर बनाने का विधान है। दक्षिण तथा गुजरात देश में इसी प्रकार के हवनकुण्ड, जिनकी मेखला सीढ़ियों के समान बाहर को हो, देखने में आते हैं। इन मेखलाओं पर से गिरे हुए अन्न को आग में डाला जाता है।

यज्ञसमिधा

जो लकड़ी जलने में अधिक धुआं और दुर्गन्धि न दे वही लकड़ी यज्ञसमिधा का काम उत्तम प्रकार से दे सकती है, जैसे–पलाश, शमी, पीपल, बड़, गूलड़, आम और बेल आदि।

अफ़गानिस्तान*, बिलोचिस्तान आदि देशों में बदाम की लकड़ी भी यज्ञसमिधा में उत्तम प्रकार से उपयोग में आसकती है। इङ्गलेण्ड आदि देशों में शाहवलूत (oak) की लकड़ी से काम ले सकते हैं। जर्मनी में लेवेण्डर तथा इटली में यूकेलिप्टिस की लकड़ी से भी काम लिया जा सकता है।

होम के द्रव्य

(१) सुगन्धित—यथा कस्तूरी, केसर, अगर, तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री, तुलसी, कपूर, कपूरकचरी, जटामांसी (बालछड़), गूगल, कश्मीरी धूप, छलपुड़ी (छाड़छबीला), लवङ्ग, नागरमोथा आदि सुगन्धित पदार्थ होम द्रव्य के लिये प्रयोग में लाये जा सकते हैं।

कस्तूरी के विषय में जहांतक हमने आन्दोलन किया है उससे भी यही निश्चय हुआ है कि शिकारी लोग कस्तूरी-मृग को कस्तूरी लेने के लोभ से जान से मार देते हैं, इसलिये कस्तूरी का उपयोग हिंसापरक होने से उचित प्रतीत नहीं होता। धर्मवीर स्वर्गवासी श्रीयुत पं० लेखरामजी कहा करते थे कि जब कस्तूरी–मृग, मद को प्राप्त होता है तो उस समय कस्तूरी की गांठ को पत्थरों से रगड़ता है तो उससे बहुत कुछ कस्तूरी गिर जाती है और

* बड़ोदाराज्य के श्रीमन्त संपतराव साहेब प्रदत्त पुस्तकालय में एक पुस्तक में इस देश का पुराना नाम यवगहन स्थान है।

ऐसी गिरी हुई को लेने में कोई भी दोश नहीं। आशा है कि विचारशील आर्य्य-पुरुष इस विषय में विशेष आन्दोलन करते रहेंगे।

केसर एक समय जब कि मद्रास में प्लेग फल रहा था तो डाक्टर किङ्ग आई० एम० एस० ने हिन्दू विद्यार्थियों को उपदेश दिया था कि यदि तुम घी और केसर से हवन करो तो महामारी (प्लेग) का नाश हो सकता है।

अगर, तगर के विषय में कुछ वर्ष हुए कि "सिविल एण्ड मिलिटरी गजट" लाहौर में बङ्गाल के एक अंग्रेज़ विद्वान् के लेख निकले थे, जिनमें उसने दर्शाया था कि अगर, तगर की सुगन्धि से कई प्रकार के विषैले छोटे २ जन्तु वायु में रहने वाले दूर भाग जाते हैं, बड़ौदा प्राचीन संस्कृत पुस्तकों के अध्यक्षश्रीमान् पं० कृष्ण अनन्त शास्त्री सं० १६२१ में आसाम देश से एक पुस्तक अग्रु पत्र पर लिखा हुआ कई सौ वर्षों का लाए हैं, पुस्तक के पत्र तथा अक्षर कीट आदि से सुरक्षित हैं, यह इस बात का भारी प्रमाण है कि अग्रु (अग्र) के सुगन्धि से कीट जन्तु भागते हैं। दक्षिण देश में सर्वत्र अगरबत्ती का भारी प्रचार है।

श्वेत चंदन का तेल निकाल कर सूज़ाक तथा आतशक जैसे भयंकर रोग में उसके विष को निवारण करने के लिये, अमेरिका के कई डाक्टर तथा भारत के वैद्यादि उपयोग करते हैं। इसी प्रकार जटामांसी, जायफल, जावित्री, कर्पूरादि जहां सुगन्धित द्रव्य हैं वहां इनका धूम, वायु को शुद्ध करता है। बम्बई के प्रसिद्ध मासिक पत्र "सत्य" में तुलसी के मलेरिया नाशक होने के विषय में एक उत्तम लेख निकला है जिसमें दर्शाया गया है कि कई वर्ष हुए बम्बई में ऐंग्लो इण्डियन अधिकारी सर जार्ज वर्डवुड ने "टाइम्स" में एक पत्र लिख कर प्रगट किया था कि जब बम्बई में विक्टोरिया बाग़ तथा एलबर्ट संग्रहालय बनाया गया तब मज़दूर लोगों को मलेरिया ताप आने लगा जब बाग़ के चारों तरफ़ तुलसी बोने में आई तब शीघ्र ही मलेरिया नष्ट हो गया।

पंढरपुर में विठोबा के मन्दिर के आस पास की जगह की आरोग्यता का कारण यही है कि उसके चारों तरफ तुलसी का जङ्गल है। ('सत्य' मासिकपत्र जिल्द १ अङ्क ४)

दूसरे पुष्टिकारक पदार्थ

घी, सुगन्धित पदार्थों की तीव्रता और रूखेपन को नाश करता है

घृत, दूध, फल, कन्द, अन्न (चावल, गेहूं, उड़द, जौ) पुष्टिकारक पदार्थ हैं। सुगन्धित पदार्थ, यदि विना घृत के मिलाये, अग्नि में जलाये जायँ तो उनकी सुगन्धि में तीव्रता और रूखापन अधिक रहने से जुकाम (प्रतिश्याय) आदि रोग उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु जिस समय सुगन्धित पदार्थ, घृत से मिला हुआ जलाया जाता है, उस समय जुकाम आदि किसी प्रकार के रोग का भय नहीं रहता और सुगन्धि की तीव्रता मर्यादा के रूप में आजाती है, इसलिये शास्त्रों की आज्ञा है कि सामग्री विना घृत के मिलाये हवनकुण्ड में न डाली जाय।

घी विषनाशक है

घी का दूसरा अपूर्व गुण यह है, कि यह विषनाशक पदार्थ है जैसा कि सुश्रुत में लिखा है। प्लेग (ताऊन) का टीका निकालने वाले डाक्टर हेफकिन का वचन है कि "घी विषनाशक पदार्थ है यह हमने अनुभव किया है"*।

घी अग्नि को प्रदीप्त करता है

घृत अग्नि को प्रदीप्त करता है। घी में अग्नि के प्रदीप्त करने की जो भारी शक्ति है, वह सब जानते ही हैं।

जबतक अग्नि प्रज्वलित न की जाय, तब तक रोग-निवृत्ति का पूर्ण साधन नहीं बन सक्ती। मट्टी का तेल (केरोसिन आइल), सरसों अथवा तिल का तेल यह भी अग्नि प्रदीप्त करने के पदार्थ हैं, परन्तु यह घृत की अपेक्षा दुर्गन्धि वाले हैं, इसलिये, कभी भी हवन में जलाने योग्य नहीं। घी के अणु वर्षा वर्साने के अपूर्व साधन हैं। पानी और घी दो ऐसे पदार्थ हैं, कि जो सर्दी से जम जाते और गर्मी से पिघलते हैं, परन्तु पानी से भी बढ़कर घी में सर्दी से जम जाने का गुण अधिक है। सर्दी के दिनों में जब कि पानी नहीं जमता परन्तु घी जम जाता है। हवन में जब घी के अणु, सूक्ष्म होकर ऊपर चढ़ते हैं, तो वायु में डोलने वाले बादलों के तल के पास ही पहुंच कर स्वयं जम जाने से उनको जमाने और वर्साने का काम देते हैं। पश्चिमीय सायंसदां कहते हैं कि बादलों के नीचे का भाग (अर्थात् तल) में यदि कृत्रिम रीति से सर्दी पहुंचाई जा सके तो बादल बरस सकता है और इस

* Pioneer Press Allhabad की छपी हुई अंग्रेज़ी पुस्तक देखो–बोलानक प्लेग।

के लिये वह कई प्रकार के पदार्थ उपयोग में लाते हैं। घी में बादलों के निचले भाग में ठण्ड की जामन लगाने का अधिक गुण है, जैसा कि अभी लिख चुके हैं। इसलिये विशेष घृत का हवन करने से वर्षा होने में सहायता हो सक्ती है। इसका प्रयोजन यह नहीं है कि घृत के हवन से बादल बन जाते हैं, किन्तु हवन का घृत-धूम (गैस) जिस प्रकार माशा भर दही का जामन मनभर दूध को जमा सकता है उसी प्रकार बादलों में जामन का काम देता है। अनन्त हवन-कुण्डों के समान सूर्य की किरणों से समुद्र का जल बादलरूप में आता है।

कई लोग ऐसी आशङ्का करते हैं कि यदि हम हवन न करें तो क्या बादल न बनें और वर्षा न होगी। इसका उत्तर यह है कि वर्षा होने का कारण तो जल का सूक्ष्मरूप से ऊपर जाकर बादल बनना है। हमारा प्रयोजन यह है कि हवन में जो घी का मुख्य भाग है वह यदि ऐसी अवस्था में ऊपर पहुंचे जहां बादल किसी रूप में हों तो वह अपने जम जाने के स्वभाव को छोड़ नहीं सकता और जिस प्रकार पानी की भाप ऊपर जाकर ठंडी पाकर जम जाती है उसीप्रकार का अनुकूल गुण अथवा उसके शीघ्र जम जाने का गुण घी के सूक्ष्मरूप में रहेगा, जिससे वह वर्षा का सहायक हो सक्ता है। साधारण हवन का मुख्य प्रयोजन तो गृह के वायु की शुद्धि है। इष्टि आदि विशेष हवनयज्ञ जहां वायुमण्डल की भारी शुद्धि कर सक्ते हैं वहां वर्षा भी ज़रूर ला सक्ते हैं।

दूध, बादाम, केला, नासपाती, सेव, नारियल तथा नारियल का घृत, शकर-कन्दी, यह सर्व पुष्टिकारक पदार्थ हैं, इनके जलाने से जल और मिष्ट के अणु, वायु में फैल कर अनेक रोगों की निवृत्ति करते हुए पुष्टि देते हैं। कोई ऐसा फल जो कि खट्टा अथवा क्षारगुण वाला हो, वह हवन में नहीं डालना चाहिये, क्योंकि क्षार (सोडा, सज्जी, नमकादि) और खट्टी चीज़ों के जलाने से अनेक प्रकार के खांसी आदि रोग उत्पन्न होते हैं। अन्न भी घृतादि के समान पुष्टिकारक पदार्थ है इसीलिये विवाहसंस्कार में लाजा होम रक्खा है, जिसमें एक प्रकार से चावलों की खीलें घृत के साथ होम की जाती हैं। प्राय: संस्कारों में स्थाली-पाक जो बनाया जाता है उसमें खीर (दूध में पके हुए चावल) अथवा मोहनभोग (हलुवा), जो कि गेहूं के आटे, घी और शक्कर से बनता है, पुष्टिकारक होने से उपयोग में लाया जाता है। कभी २ याज्ञिक लोग यव (जौ) भी हवन में डाला करते हैं।

गेहूं, जौ, चावल और मोहनभोग, यह सब अन्न जब घी के साथ अथवा विना घी के आग पर भूने जाते हैं तो एक प्रकार की सुगन्धि देते हैं। इसलिये उत्तम उत्तम प्रकार के अन्न, जो पुष्टिकारक होने के अतिरिक्त सुगन्धित भी हों, हवन में डालने चाहियें।

तीसरे मिष्ट पदार्थ

गुड़, शक्कर, शहद, छुहारे, दाख आदि हैं। सुगन्धित पदार्थों के साथ सृष्टि में मिठास रहता है। सुगन्धित पुष्पों पर मधुमक्खी फूलों के अन्दर मिठास के लेने को ही आती हैं। शर्करा (शक्कर), गुड़, खांड, मिश्री के जलने से मन्द मन्द सुगन्धि आती है। जब शक्कर खांड आदि के साथ घी भी जलता है, तो सुगन्धि और भी रोचक और उत्तम प्रकार की हो जाती है। अमेरिका के एक मासिक-पत्र * में एक विद्वान् ने लिखा था कि आग में शक्कर के जलाने से 'हे फीवर'† अर्थात् एक प्रकार के ज्वर का नाश होता है। छुहारे, खजूर, द्राक्षा आदि फल, जिनमें मिठास अधिक होती है वह, भी हवन में डाले जा सकते हैं।

चतुर्थ रोगनाशक पदार्थ

गिलोय भारतवर्ष में "क्वीनाइन" का काम देती है। ज्वर के विष को नाश करती और शरीर को आरोग्यता देती है।

प्रोफ़ेसर मैक्समूलर साहब की किताब "फिज़ीकल रिलीजन" के पाठ से विदित होता है कि यवन-देश के तत्ववेत्ता प्लुटार्क ने आग को वायु-शोधक माना है। और इस पर उक्त प्रोफ़ेसर साहब लिखते हैं कि आग जलाने की रीति गत शताब्दी तक स्काटलैण्ड में पाई जाती थी। तथा आयरलैण्ड और दक्षिणी अमेरिका में महामारी के लिये अग्नि जलाने की प्रथा प्रचलित रह चुकी है। मैक्समूलर की पुस्तक के पाठ से सिद्ध होता है कि हवनयज्ञ का प्रचार एक समय सब भूमण्डल पर रह चुका है।

जापान और चीन में होम को घोम कहते हैं और मन्दिरों में सुगन्धित द्रव्य जलाते हैं। जर्मनी में लवेंडर की बत्ती जलाई जाती है। ईरान के पार्सी लोग हवनयज्ञ को हिन्दुओं की तरह उत्तमता से करते हैं।

---

* The Science Sifting. † Hay fever.

हवन की उपयोगिता में मद्रास के सेनेटरी कमिश्नर का अपूर्व साक्ष्य

आर्य लोग जो हवन की आवश्यकता दर्शाते हैं, वहां पर एक प्रमाण यह भी देते हैं कि प्राणियों के मल मूत्र से दुर्गन्धि उठ कर वायु को अशुद्ध कर देती है। उस दुर्गन्धि को आग से दूर करने और आग के द्वारा सुगन्धि फैलाने के लिये जो कार्य किया जाता है वही हवनयज्ञ है। जो अंग्रेज़ी पुस्तक "व्यूवानिकप्लेग" नामी पायनियर प्रेस प्रयाग से निकली है उसमें लिखा है कि २५ मार्च सन् १८६८ को मद्रास यूनिवर्सिटी (विश्वविद्यालय) के ग्रेजुएट (बी० ए० आदि) विद्यार्थियों को जर्नल किङ्ग आई० एम० एस० सेनेटरी कमिश्नर मद्रास ने एक उपदेश दिया था, उस का सारांश हेनकिन साहेब ने "व्यूवानिकप्लेग" नामी पुस्तक में उनके ही शब्दों में लिखा है हम उस का अभिप्राय यहां पर लिखते हैं:-इस पुस्तक के पृष्ठ बाईस पर लिखा है कि साहिब कमिश्नर ने भगवती-पुराण (देवी-भागवत) का वर्णन करते हुए बतलाया है कि उसमें महामारी का वर्णन है, रोग की दशा में चूहों के गिरने का वर्णन है, और उस के दूर करने के लिये घी, चावल और केसर आदि के हवन का विधान है जिस को शान्तिहोम के नाम से पुकारा है। और अन्य कई बातें जैसे धूप-बत्ती का जलाना आदि भी लिखा है, उस पुराण के हवन की रीति को वर्णन करते हुए पुस्तक-निर्माता ने प्रकट किया है कि हवन की वर्तमान रीति मेडिकल सायंस के अनुकूल है और लिखा है कि हवन करना लाभदायक और बुद्धिमानी की बात है। इस पुस्तक की भूमिका डब्ल्यू एम० हैफकिन साहेब बम्बई वाले ने लिखी है; इस पुस्तक के पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि फ्रांस देश में रूक्स महाशय ने जो टीका प्लेग का माद्दा निर्मित किया था वह अत्यन्त विषैला था, हैफकिन महाशय ने घी में मिलाने से उसका विष दूर कर दिया है। इससे सुश्रुत के कथन की पुष्टि डाक्टर हैफकिन की परीक्षा से हो गई कि घी विषनाशक है।

बड़ौदा राज्य का एक प्रशंसायोग्य कार्य्य

बड़ौदा राज्य के सरकारी गज़ट (आज्ञापत्रिका) में श्रीमन्त महाराजा श्री सयाजी राव गायकवाड़ सेनाखासखेल शमशेर बहादुर के, हुक्म तथा राज्य के सुयोग्य डाक्टरों की सम्मति द्वारा नीम के पत्तों की धूनी के लाभों पर प्रजा का ध्यान दिलाया गया है। इसकी धूनी, रोग तथा मच्छर आदि को दूर करनेवाली है। हवन में इसके पत्ते इसलिये नहीं डालते कि इस का धुआं कड़ुवा होता है।

मीठा भात, खीर, लड्डू, मोहनभोग यह पदार्थ जो हवन के लिये बनाये जाते हैं इन को "परिभाषा" में स्थालीपाक कहते हैं। इसके बनाने में प्रथम इस बात पर ध्यान दिलाया गया है, कि चावल, आटा, घी, शक्कर आदि पदार्थों को भलीभांति उजाले में देख लेना चाहिये, ताकि किसी प्रकार का जीता वा मरा हुआ जन्तु अथवा कंकर आदि अनिष्ट पदार्थ रह न जाय और चलनी आदि से छानने, धोने, सुखाने, तपाने आदि अनेक प्रकार की यथायोग्य क्रियाओं से शुद्ध कर फिर मोहनभोग इनसे बनाना चाहिये।

दो सेर आटे में, घी एक सेर, मीठा दो सेर, जल चार सेर, केसर एक माशा, जायफल एक माशा, जावित्री एक माशा डालनी चाहिये। सेर भर दूध की खीर बनाने के लिये चावल एक छटांक, मीठा डेढ़ छटांक, इलायची तीन माशे होनी चाहिये।

एक सेर बेसन अथवा आटे के लड्डू बनाने के लिये सेर भर घी, छः माशे इलायची, मीठा चौदह छटांक होना चाहिये। मीठे भात के लिये जितने चावल हों उतना ही मीठा डालना चाहिये।

'संस्कारविधि' में स्थालीपाक शीर्षक के नीचे जो मन्त्र दिया है उस में से "ओ३म् देवस्त्वा सविता पुनातु" इतना भाग यजुर्वेद अ० १। मं० ३ का है। और शेष जैसा कि महात्मा नारायण-भक्त छोटा उदयपुर-निवासी ने दर्शाया है वह यजु० अ० १। मं० ३१ में है।

इस मन्त्र में बतलाया है कि सूर्य पदार्थों को पवित्र करता है और यज्ञ के पदार्थों में कोई छिद्र अर्थात् अनिष्ट पदार्थ न रह जाय। इसलिये सूर्य की रश्मियों में अर्थात् उजाले में पदार्थों को देख भाल तथा शुद्ध कर लेना चाहिए। रात को अथवा अन्धकार में पूरी शुद्धि नहीं हो सकती।

जिस वस्तु को शुद्ध करना हो उसको कुछ काल धूप में अवश्य डाल दें, क्योंकि सूर्यरश्मि अदृष्य विषैले कृमियों को नष्ट करती हैं।

"अग्नये त्वा जुष्टं निर्वपामि" यह विधि चरु बनाने की है, इसका अर्थ यह है कि अग्नि के लिये तुझको प्रीति से डालता हूं। इसका अभिप्राय यह है कि अग्निहोत्र के लिये, जो सामग्री तैयार की जाय, वह बेगार काटने की तरह न हो, किन्तु मन लगा कर उस सामग्री को उचित परिमाण में शुद्ध करके डालनी

चाहिये । 'अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि' अर्थात् तुझ अग्नि के लिये प्रीतिपूर्वक छोड़ता हूं अर्थात् जिस समय आग के ऊपर बर्त्तन में पकने के लिये स्थालीपाक डाला जाय उस समय भी मन लगा कर पाकविधि को पूर्ण करना चाहिये।

यज्ञपात्र–व्याख्या ।

यज्ञपात्र चांदी अथवा काष्ठ के बनाने को संस्कारविधि में लिखा है। उपयोग में काष्ठ के अधिक उत्तम और सस्ते हो सक्ते हैं। इन पात्रों के नाम, प्रकार परिमाण और काष्ठादि की जाति पर विचार करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन आर्य्य लोग वनस्पतिशास्त्र और शिल्पक्रिया में कैसे निपुण थे? एक स्थल पर ऋत्विजों के वरण के लिये सोने के कुण्डल (वाले) और अंगूठी देने का विधान है इससे पाया जाता है कि उस समय पुरोहित लोग कुण्डल और अंगूठी धारण करते होंगे जो कि यथासमय वे इस को बेच कर अन्य उपयोगी पदार्थ लेते हों।

यजमान और उसकी पत्नी के लिये रेशम के वस्त्र का विधान होने से स्त्रियों को यज्ञ का अधिकार था, यह सिद्ध है। रेशमी वस्त्र के यज्ञ समय में दो लाभ प्रतीत होते हैं—

(१) यह कि कहीं दैवयोग से आग लग जाय तो उससे बहुत बचाव हो सके क्योंकि रेशम और ऊन के बने हुए वस्त्रों का यह गुण है कि उन में आग थोड़ी जगह में जलकर बुझ जाती है और अधिक नहीं बढ़ती।

(२) यह कि गर्मी की ऋतु में रेशमी वस्त्र धारण करने से पसीना अधिक नहीं आता। रेशम कई प्रकार से बनाया जाता है। एक प्रकार ऐसा है कि जिस में कीड़े मारे न जाएँ और प्राप्त हो सके, परन्तु आज कल लोभी लोग कीड़ों को प्रायः मार ही देते हैं। आज कल तो शाल आदि ऊनी वस्त्र का रेशम के स्थान में उपयोग करना ठीक है। ऊनी वस्त्र को भी रेशमी वस्त्र के समान शीघ्र आग नहीं लगती। रेलगाड़ी चलाने वाले ऊनी रूमाल इसीलिये रखते हैं।

यज्ञपात्रों की सूची देखकर कई लोग कह देते हैं, कि यज्ञ करने के लिये इतना जगड्वाल कौन करे, परन्तु यह उनकी भूल है। वे दफ़्तर बनाने के लिये कुर्सियें, मेजें, अल्मारियें, दरियें, सन्दूक, दवात, कलम, कागज़, पेपरवेट, रजिस्टर (पत्रक), फाइल (तार), घड़ी, केलेंडर, चिक, पंखा, रग आदि अनेक पदार्थों को कभी जगडवाल नहीं कहेंगे, जहां कि उनको बैठ

कर लिखने का काम करना है। जब लिखने के काम के लिये एक कमरा और इतनी सामग्री की आवश्यकता है तो हवन करने के लिये यज्ञशाला और यज्ञ-पात्रों की क्या आवश्यकता नहीं ?

ऋत्विग्वरण व्याख्या

यजमान ऋत्विज् को काम करने के लिये और अपने आसन (सीट) पर बैठने के लिये प्रार्थना करे। आज कल भी सभ्य-संसार में कोई सभा समाज हो तो वहां सभापति को आसन ग्रहण करने इत्यादि के लिये प्रार्थना की जाती है और सभापति उसका उत्तर स्वीकृति में देता है। यहां भी यजमान और ऋत्विज् को वैसे ही कार्य्य करने के लिये विधान है। आगे चल कर होता, अध्वर्यु, उद्-गाता और ब्रह्मा का आसन वेदी के चारों ओर लगाने का विधान है अर्थात् होता का आसन पूर्वमुख हो, अध्वर्यु का दक्षिण मुख, उद्गाता का पश्चिम मुख और ब्रह्मा का उत्तर मुख। शङ्का करने वाला कह सकता है कि इन आसनों का क्रम बदला जाय तो क्या दोष है ? इसके उत्तर में हम कहेंगे, कि जो क्रम आप निश्चय करेंगे उस पर भी यह शङ्का की जा सकती है, कि वह क्रम बदला जाय तो क्या दोष है ? अन्त को अव्यवस्था हो जायगी। व्यवस्था को और उपयोगिता को दृष्टि में रख कर ऐसे आसनों का क्रम कार्य्यसिद्धि के लिये निश्चय किया गया है।

आगे तीन मन्त्रों से आचमन करने का विधान है। यूरोप आदि देशों में यह रीति है, कि जब कोई वक्ता कोई विशेष बोलने का काम करने लगता है तो उसकी मेज पर पानी का गिलास, किसी समय पर पीने के लिये रख दिया जाता है, जो कि उसको आचमन का काम देता है। पुराने आर्य्य लोगों ने वेदपाठ इत्यादि के आ-रम्भ से पूर्व ही आचमन करना कण्ठ–कोमलता आदि के लिये नियत किया था और बीच बीच में कई बार किसी क्रिया का कोई अङ्ग समाप्त कर लेने पर भी वह आचमन करते थे।

आचमन के पहिले मन्त्र में, जल को अमृत और प्राणों का आधार बतलाया गया है। इस बात को स्मरण में रखने और तदनुसार आचरण करने से कितने शारीरिक रोग नष्ट हो सकते हैं ? कितना रुपया और श्रम लोगों को इस बात के समझाने पर लगता है कि लोग गन्दे कूओं, सड़े हुए तालाबों और खराब नदियों

का पानी, जो विषरूप है, उपयोग में न लावें। जल को अमृत दशा में रखने के लिये कई स्थलों में नल भी जारी किये जाते हैं। जिन नलों में कूओं अथवा तालावों का पानी आता है। यदि वे कूप और तालाव अमृत जल से भरपूर नहीं हैं तो नल का भी पानी क्या कर सकता है? पुराने समय में खुले जङ्गल में किसी बाग़ अथवा स्वच्छ स्थान में पीने के कूप खोदे जाते थे और उनको स्वच्छ रखना धर्म का अङ्ग समझा जाता था। आज स्वच्छता का भाव विद्याहीन होने से नष्ट हो रहा और पानी अमृत के स्थान में विष बन रहा है। स्वच्छ अथवा निर्मल जल की महिमा को नित्यप्रति स्मरण कराने के लिए आचमन का यह पहिला मन्त्र पढ़ा जाता था। शुक्रनीति में राजा के कोट (क़िला) में नल का होना दर्शाया गया है। नगरों और ग्रामों की प्रजा के लिये हमारे विचार में कूप-जल बहुत उत्तम है, इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि गरमियों में कूप-जल ठंडा और सरदियों में गरम होता है, जो पीने और स्नान के लिये बहुत लाभदायक है। नल के जल को ऐसा करने के लिये कोलों और वरफ का ख़र्च उठाना पड़ता है। दूसरे कूप में क्षारपदार्थ रहते हैं। जो सोडावाटर का काम देते हैं।

दूसरे आचमन मन्त्र में जल को निश्चित रीति से पोषक कहा गया है। आज लोग शराब आदि पदार्थों को पौष्टिक समझते हुए निर्मल जल का महत्त्व भूल गये हैं, किन्तु जिस समय आर्य्य लोगों को नित्यप्रति स्मरण कराया जाता था कि जल पौष्टिक वस्तु है तो उस समय मद्यपान आदि का प्रचार देश में न था। जापानी लोग पीने के जल पर बहुत ध्यान देते हैं। और कहा जाता है कि उनके शारीरिक बल का एक मुख्य कारण निर्मल जल भी है।

तीसरे आचमन मन्त्र में बताया है कि शारीरिक पुष्टि का उद्देश्य सत्यप्राप्ति और शुभ कामों के करने से कीर्ति और धर्म्मानुकूल धनप्राप्ति है। सत्य और उत्तम कर्मद्वारा धनप्राप्ति की यत्न करने कराने वालों के लिए भारी आवश्यकता है इसको बार बार स्मरण कराया जाता था।

आगे सात मन्त्रों से जल द्वारा अङ्गस्पर्श करने का विधान है। रात को कोई मनुष्य गाढ़निद्रा में सो रहा हो तो उसके सामने कितने दीपक किये जावें और कितनी ही आवाजें दी जायँ, तो भी उसका उठना कठिन है, परन्तु आप जल के छींटे बिन बोले उसके किसी अङ्ग पर डाल दीजिये, तुरन्त ही

...ा होगा। इससे सिद्ध हुआ कि आलस्यनिवृत्ति के लिये जल बड़ा उपयोगी ... करने वाले आलस्यतन्द्रा आदि दोषों से ग्रस्त न हो जायँ, इसलिये जल ... छिड़कने की आवश्यकता है। जल रुधिर के कोप को शान्त करता है। जिस ...रुष को क्रोध चढ़ रहा हो उसको ज़रा हाथ मुंह धुला वा जल पिला दीजिये फिर देखिये कि क्रोध कहांतक शांत होता है। इसलिये न केवल आलस्य, किन्तु नाना अङ्गों में शान्ति-संचार के लिये भी जल छिड़का जाता है। बौद्ध लोगों ने जल मार्जन की यह रीति उत्तम बतलाई है और उनके अनुयायी ईसाई लोगों ने शिरोमार्जन अथवा बपतिस्मा को धर्म का अङ्ग ठहराया है।

मार्जन के पहिले मन्त्र में मुख तथा वाक् इन्द्रिय को आरोग्य रखने की स्मरण-रूपी प्रार्थना है। दूसरे में घ्राण इन्द्रिय, तीसरे में नेत्र तथा चक्षु इन्द्रिय, चौथे में दोनों कान तथा श्रवण इन्द्रिय, पांचवें में दोनों भुजायें तथा बल शक्ति, छठे में दोनों जङ्घाएं तथा वेग पराक्रम, सातवें में सारी देह और उसके सब अवयव।

आजकल लोग उपहास करते हैं कि पुराने आर्य्य केवल मृत्यु का ही चिन्तन करते थे। शरीर उन्नति के शत्रु थे। परन्तु इन सात मन्त्रों को नित्यप्रति स्मरण करने वाले आर्य कहांतक शारीरिक उन्नति के महत्व को समझे हुए थे, ... पर अधिक लेख करने की आवश्यकता नहीं। आज कल स्कूलों में सैनेटरी ... पढ़ने वाले स्वच्छ जल और आरोग्यता के नियमों को कुछ समझते हैं, ...पुराने समय में यह दश मन्त्र हाईजीन के मुख्य सिद्धान्तों का काम देते थे। ...सिक शक्ति पर किताबें लिखने वाले अमरीका आदि देशों में बतलाते हैं कि ...मनुष्य रोगी है और वह ऐसी इच्छा नित्यप्रति करे कि मेरे अमुक अंग में रोग न ... तो उसकी इच्छा शक्ति इस प्रकार के अभ्यास से बहुत प्रबल हो जावेगी और वह उन साधनों को उपयोग में ला सकेगा जिससे स्वस्थ रह सकता है। प्रार्थना का वह लोग एक बड़ा फल मानसिक शक्ति को प्रबल करना मानते हैं। परन्तु इन सात मन्त्रों में न केवल शारीरिक उन्नति के महत्व का ही स्मरण कराया गया है किन्तु ...च्छा शक्ति को प्रबल करने का मानो अभ्यास करा रहे हैं। प्रार्थना कराने का फल ...िक बल की प्राप्ति है। और इसीलिये वेदों में प्रार्थना की शैली प्रायः बहुतसे ...ों देखने में आती है। कई मत ऐसे हैं जो प्रार्थना से अन्तःकरण की शुद्धि के अतिरिक्त, कृतपाप निवृत्ति भी मानते हैं। पुराने आर्य प्रार्थना, उपासना आदि से अन्तःकरण की पवित्रता और उसमें बलप्राप्ति होना मानते चले आये हैं *।

* वैदिक प्रार्थना वास्तव में शुभ इच्छा है। इसके लिये देखो सत्यार्थप्रकाश स० ७ तथा

५

समिधाचयन व्याख्या

"ओ३म् भूर्भुवः स्वः" यह नाम परमात्मा के हैं। इनका उच्चारण करके द्विज के घर से अग्नि लाने अथवा घृत दीपक जला उससे अग्नि प्रज्वलित करने का विधान है। पुराने समय में द्विजों के घर में गार्हपत्य अग्नि पारसियों की अग्यारी की तरह सदैव जागृत रहती थी। गुण कर्म्म से जो शूद्र होते थे वे इस अग्नि को जागृत नहीं रख सकते थे और न अब कोई गुण कर्म्म से बना हुआ शूद्र उतने कर्त्तव्य पालन कर सकता है जितना कि द्विज।

दूसरी विधि, घृत का दीपक जला कर अग्नि जलाने की कही गई है।

केरोसिन-ऑयल, कोलगेस आदि के दीपक, घृत-दीपक की अपेक्षा अधिक दुर्गन्धि वाले होते हैं, इसलिये हवनकुण्ड के समीप इनका जलाना ठीक नहीं, मोमबत्ती में दुर्गन्धि नहीं होती परन्तु मोमबत्तियें चर्बी से बनाई जाती हैं और चर्बी विना हिंसा के प्राप्त नहीं होती। जहां घृत न मिल सके वहां नारियल का घृत उपयोग में ला सकते हैं, जैसे कि बंगाल, दक्षिण तथा गुजरात में नारियल के घृत के दीपक जलाते हैं। यह तो आपत्काल की बात रही, सदैव घृत का ही दीपक जलाना नारियल के घृत से अधिक लाभदायक है। ऐसे दीपक आजकल मिलते हैं जिनमें मीठा तैल जल सकता है।

आगे जिस मन्त्र को पढ़ कर अग्नि रखने को कहा है उस मन्त्र में ... के गुणों का विधान है। दूसरे मन्त्र को पढ़ कर व्यजन (पंखे) से अग्नि ... करने को कहा है उस मन्त्र में अग्नि के वैसे ही उत्तम गुणों का विशेष विधान अर्थात् बतलाया गया है कि हे अग्ने! तू भली प्रकार प्रकाशित हो। इससे पाया जाता है कि प्रचण्ड जलती हुई, आग में हवन करने की आज्ञा है और किसी प्रकार की बुझी हुई अथवा मन्द अग्नि में हवन करने का निषेध है। डाक्टर भगतराम साहनी एम० डी० कश्मीर वाले ने जो प्लेग-निवारक अंगीठी बनाई थी उसका मूल आधार यही नियम था कि अग्नि की ज्वाला बहुत प्रचण्डरूप धारण कर सके, क्योंकि प्रचण्ड अग्नि में ही मलिन वायु को गरम करके दूर भगाने की शक्ति अधिक रहती है। इस मन्त्र में अग्नि के सहित घरों में रहने का विधान होने से पुराने आर्य्यों ने अग्नि को सदैव घर में जागृत रखने के उपाय किये थे।

हमारी ब्रह्मयज्ञ नामी हिन्दी पुस्तक, जिसके उर्दू, गुजराती तथा बंगाली अनुवाद हो चुके हैं। आपके संस्कृत कोष में प्रार्थना का अर्थ इच्छा भी है।

अगले मन्त्र में, जिससे पहिली समिधा अग्नि में दी जाती है, बतलाया गया है कि अग्नि काष्ठ आदि द्वारा ही प्रचंड हो सकती है। और यह प्रचण्ड अग्नि पुत्र आदिकों के रोगों, पशुओं के रोगों और वीर्य्य के रोगों को दूर करने से उनकी वृद्धि का तथा वृष्टि द्वारा अन्नवृद्धि का भी कारण है। इसी मन्त्र के शेष भाग में यज्ञ की अग्नि, जो परोपकार का साधन है, उसके निमित्त आहुति देने तथा स्वार्थपरित्याग का विधान है, जैसे यह कहते हुए कि यह आहुति अग्नि के लिये है मेरे लिये नहीं। यदि हवन करने से वर्षा सब के घरों पर पड़ेगी तो उसके घर में भी, जो "होता" है, वर्षा ज़रूर पड़ेगी अर्थात् सर्वोपकार अथवा परोपकार के अन्दर अपना भला भी हो जाता है, किन्तु स्थूलदर्शी मनुष्य औरों के उपकार के अन्तर्गत अपना उपकार न समझने के स्थान में केवल अपने उपकार के लिये ही प्रार्थना वा काम करता है जिससे अपना उपकार भी पूर्ण रीति से सिद्ध नहीं कर सकता औरों का तो करना ही क्या है। सामाजिक उन्नति का यही एक नियम है कि सब के उपकार में अपना उपकार ध्यान करे। ईश्वरीय नियमों से उस का उपकार हुए विना नहीं रहेगा। इस उत्तम उपदेश को मन में दृढ़ करने के लिये इस प्रकार के वाक्य उच्चारण कराने का पुराने समय में अभ्यास डाला जाता था और तभी तो आर्य्य लोग परोपकारी होते थे।

आगे के दो मन्त्रों से दूसरी आहुति देने का विधान है। वादी कह सकता है कि यदि एक मन्त्र से दूसरी आहुति दी जाती तो क्या हानि थी? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि कुछ विश्राम लेकर दूसरी आहुति डालने के लिये, एक के स्थान में दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है ताकि पहिला काष्ठ, जो डाला था वह, भली प्रकार जल जाय और धूआं न होवे पावे। हम रोज़ देखते हैं, कि जिस वक्त चूल्हे में पहिले अग्नि प्रदीप्त करने के लिये बत्ती प्रवेश की जाती है तो ज़रा ठहरना पड़ता है पूर्व इसके कि अधिक ईंधन उन के निकट लाया जावे। उसी भाव को अर्थात् ज़रा थम कर दूसरी समिधा डालने के लिये दो मन्त्र पढ़ने का विधान किया गया है। इन दो मन्त्रों में समिधा के साथ घृत डालने का विधान है, क्योंकि घृत अग्नि को प्रचण्ड करने का परमसाधन है।

अगले एक मन्त्र से तीसरी समिधा अग्नि में छोड़ने का विधान है और उस मन्त्र में भी अग्नि को भली प्रकार प्रचण्ड करने की ताकीद है।

इन तीन समिधाओं के पीछे पांच आहुति घृत की अथवा मोहनभोग आदि सामग्री की देने को लिखा है। इन पांच घृत-आहुतियों का उद्देश्य यह है कि अग्नि पूर्णरूप से जल उठे और वेदी में रक्खी हुई समिधाएँ भली प्रकार जलने लगें। इसके पीछे वेदी के चारों तरफ़ पानी छिड़कने अथवा बनी हुई नालियों में पानी भरने का विधान है। प्रश्न हो सकता है कि पहिले ही पानी क्यों न छिड़क लिया? इसका उत्तर यह है कि यदि कुण्ड के अन्दर कोई जन्तु लकड़ियों से निकल कर, छिप कर बैठ रहा है तो वह प्रचण्ड अग्नि होने पर कुण्ड से बाहर स्वाभाविक भागने की चेष्टा करेगा। कई बार देखने में भी आया है कि पांच घृत आहुतियों के समाप्त होने से पहिले कोई न कोई जन्तु गर्मी से घबड़ा कर कुण्ड के बाहर को भाग निकलता है। जब वह भाग निकला अर्थात् जब पांच आहुतियें पूर्ण होगईं और अग्नि पूर्णरूप से जल उठी तो फिर वह अन्दर छिपा हुआ रह नहीं सकता। इसलिये पांच घृत आहु-तियों के पश्चात् अर्थात् जन्तु को भाग जाने के लिये लग भग पांच मिनट का अवकाश दिया जाता है और फिर ज्यों ही कि जन्तु भाग जाय अथवा पंच घृत आहुति समाप्त हो जायँ तो उसको अथवा अन्य किसी जन्तु को अग्नि की तरफ़ से आने से बचाने के लिये चारों तरफ़ से पानी छिड़कने वा पानी की छोटी सी नाली भर दी जाती है। चार मन्त्र जिनको पढ़ कर चारों तरफ़ जल छोड़ा जाता है, उन पहिले तीनों में ईश्वर की अदिति, अनुमति और सरस्वति आदि नामों से प्रार्थना करते हुए अहिंसाव्रत धारण करने का विधान है।

चौथे मन्त्र में सविता नाम परमात्मा का लेकर प्रार्थना की गई है, कि तीन वस्तुएं हम को यज्ञ की रक्षा के निमित्त सदा प्राप्त होती रहें—(१) यज्ञपति अर्थात् क्षत्रिय आदि सुप्रबन्धकर्त्ता लोग। (२) दूसरे पवित्रबुद्धि अर्थात् छल कपट से रहित सत्य ज्ञान। (३) वाणी की मधुरता अर्थात् प्रियभाषण।

आगे बतलाया है कि "आघारावाज्याहुति" उन आहुतियों को कहते हैं कि जो कुण्ड के उत्तर और दक्षिण भाग में दी जाती हैं।

कुण्ड के मध्यमें जो आहुतियां दी जाती हैं उनको "आज्यभागाहुति" कहते हैं।

यह जो लिखा है कि स्रुवे को अँगूठा, मध्यमा (तीसरी अँगुली), अनामिका (चौथी अँगुली) इन से पकड़ कर घृत की आहुति दे; यह इसलिये कि ऐसी

दशा में जो चीज़ पकड़ी जायगी वह दृढ़ता से पकड़ी न रहेगी, किन्तु ढीली अवस्था में होगी। ऐसे पकड़ने को ढीला पकड़ना हम कह सकते हैं और इसलिये स्रुवे को इस प्रकार पकड़ने का विधान किया गया है, कि घृत को अग्नि में छोड़ना है और छोड़ने में सरलता हो।

दिक्विशेष उत्तर भाग में आहुति अग्नि तत्व की वृद्धि के लिये और दक्षिण भाग में आहुति जल की शुद्धि के लिये देने का विधान है। यूरोप के विद्वान् मानते हैं कि उत्तर और पूर्व दोनों अग्निप्रधान दिशाएँ हैं और दक्षिण तथा पश्चिम ऐसी दिशाएँ हैं जो अग्निप्रधान नहीं हैं। उक्त आहुति में जो उत्तर दिशा को दी जाती है वह अग्नि के निमित्त कही गई है और दक्षिण भाग में जो आहुति दी जाती है उस को सोम अर्थात् जल के निमित्त कहा है। यह वर्णन वस्तुओं के स्वाभाविक गुणों का प्रकाशक है और इसके पाठ से इस यथार्थ ज्ञान की रक्षा होती है।

फिर वेदी के मध्य में जो दो आहुतियां दी जाती हैं उन को प्रजापति और इन्द्र अर्थात् गृहस्थी और ऐश्वर्यवान् के निमित्त कहा गया है। फिर व्याहृति की चार आहुतियों का वर्णन है। इन चारों में ईश्वर के अनेक नाम लेकर उस की महिमा प्रकाश करने के लिये इन चार आहुतियों का विधान है फिर स्विष्टकृत् नाम एक आहुति एक मन्त्र से देने का विधान है उस मन्त्र का तात्पर्य यह है कि हमारी कामनाएँ सिद्ध हों। भौतिक वा शारीरिक प्रायश्चित्त का उत्तम साधन अग्नि है। मनुष्य अल्पज्ञ और न्यूनाधिक काम करने वाला वा भूलने वाला है इस का भी उपदेश है।

फिर प्राजापत्याहुति को मौन कर के देने का विधान है। मौन करने का अभिप्राय यह है कि मन में उस मन्त्र पर विशेष विचार किया जाय। वास्तव में यह समाप्ति की आहुति है, इस के आगे जो चार आज्याहुति और अष्ट आज्याहुति लिखी हैं वे विकल्प से कई संस्कारों में दी जाती हैं। पूर्व इसके कि विकल्प की आहुतियां, जो कि मुख्य अङ्ग नहीं हैं, आरम्भ हों प्रजापति की आहुति पर यज्ञ समाप्त समझा जाता है अर्थात् समाप्ति पर मौन होकर आहुति देने का विधान है, जिस का अभिप्राय यह है कि यज्ञ करने वाला यज्ञ का मुख्य उद्देश्य जो प्राजापत्य अर्थात् प्रजा के पालन माता, पिता, गुरु, उपदेशक और राजा हैं उनकी उन्नति का साधन यज्ञ है इस प्रकार समझें।

आज्याहुति के चार मन्त्रों का तात्पर्य्य

(१) पहिले मन्त्र में अग्नि को दीर्घायु तथा बल का कारण बताया है और यह सब जानते हैं कि जब तक शरीर में अग्नितत्त्व प्रधान रहता है तब तक ही यौवन अवस्था बनी रहती है। जब अग्नितत्त्व शरीर में मन्द हो जाता है तब वृद्ध अवस्था आरम्भ हो जाती है। इस मन्त्र में, दुष्ट विषैले दृश्य तथा अदृश्य जीव जन्तु, अग्नि से दूर भागते हैं इसका भी उपदेश मिलता है। सिंह, सर्प, भालू, मच्छर आदि अग्नि की ज्वाला से निस्सन्देह भागते हैं और अदृश्य जन्तु जिनको रोगजन्तु वा Germs कहते हैं वह भी आग से भागते हैं।

(२) इस मन्त्र में अग्नि को शोधक बतलाया है और इसी बात को लेकर आज यूरोप के विद्वान् प्लेग आदि से ग्रस्त घरों में अग्नि के जलाने पर ज़ोर दे रहे हैं। यह अग्नि का शुद्धि करने का गुण एकदेशीय नहीं किन्तु सर्वदेशीय है, इसको दर्शाने के लिये मन्त्र में कहा गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और पांचवें अतिशूद्र अर्थात् सब मनुष्यों के रोगों का शमन अग्निहोत्र करता है। जो लोग कहते हैं कि वेद में शूद्रों के लिये यज्ञ अथवा संस्कार करने का विधान नहीं है वे इस मन्त्र को भली प्रकार पढ़ें। पांच जन का दूसरा अर्थ वह है जो पण्डित शिवशङ्करजी काव्यतीर्थ ने किया है अर्थात् गोरे, पीले, काले, ताम्रवर्णी तथा भूरे रंग के मनुष्य। इससे भी भू-लोक के मनुष्यमात्र को यज्ञ का अधिकार है यही सिद्ध होता है।

(३) यहां अग्नि से परमेश्वर के गुणों का वर्णन है कि वह परमात्मा चेतन होने से शुभकामना करने वाला है और सब का पतितपावन है उसी के नियमों पर चल कर एक नीच से नीच मनुष्य उन्नति को प्राप्त हो सकता है, क्योंकि मन्त्र में 'मयि' शब्द के प्रयोग से पाया जाता है कि एक तुच्छ व्यक्ति उसकी उपासना तथा यज्ञ आदि के करने से उन्नत होसकता है।

(४) चौथा मन्त्र भी ईश्वर प्रार्थना सम्बन्धी है और उसका अर्थ तथा व्याख्या पहिले आ चुकी है।

अष्ट-आज्याहुतियों के मन्त्रों का तात्पर्य्य

(१) पहिले मन्त्र में राजदण्ड का महत्त्व दर्शाते हुए बतलाया गया है कि लोग किसी से द्वेष, जो कि सर्व पापों का मूल है, न करें।

(२) दूसरे मन्त्र में प्रभात समय में अग्निहोत्र करने का विधान किया गया है और क्षत्रिय आदि राजपुरुषों को यज्ञ आदि की रक्षा के लिये यज्ञस्थल पर बुला कर बैठाने का विधान है ताकि क्षत्रिय आदि शासकजनों के विद्यमान होने से कोई दुष्टजन किसी प्रकार का उपद्रव न कर सके।

(३) तीसरे मन्त्र में राजा आदि शासक पुरुषों से प्रत्यक्ष होकर बात चीत करने का विधान है। ताकि वह भली प्रकार यजमानों की इच्छानुसार सुप्रबन्ध कर सकें।

(४) चौथे मन्त्र में बतलाया है कि ईश्वर-उपासना और अग्निहोत्र कर्म्म से आयु की वृद्धि होती है यह बात याद रखने योग्य है।

(५) पांचवें मन्त्र में बतलाया गया है कि यज्ञ आदि शुभ कर्मों के करने में अनेक प्रकार के विघ्न मनुष्यों को प्राप्त होते हैं और वर्तमान काल में उन विघ्नों का शमन सदाचारी विद्वान् ही कर सकते हैं। इसलिये कई प्रकार के विघ्नों को दूर करने के लिये सदाचारी विद्वानों का आश्रय लेना चाहिये।

(६) छठे मन्त्र में यज्ञ का अग्नि, प्रायश्चित्त योग्य पुरुषों के दोषों का निवारक कहा गया है।

(७) सातवें मन्त्र में तीन अर्थात् अधम, मध्यम और उत्तम प्रकार के विघ्नों को बतलाते हुए उनके नाश करने का उपाय, ईश्वर की आज्ञा का पालन बतलाया गया है। वास्तव में पाप, दुःख और विघ्न क्या है? सृष्टिनियम अथवा ईश्वरीय आज्ञा के अनुकूल न चलना। पाप पहिले बीजरूप से मन में उत्पन्न होता है फिर वाणी द्वारा शाखारूप में आता है और कायिक कर्म द्वारा फलरूपी अवस्था को प्राप्त होता है। मानसिक पाप अधम अवस्था में, वाणी के पाप मध्यम अवस्था में और कायिक पाप उत्तम अवस्था में समझने चाहियें।

(८) आठवें मन्त्र में मनुष्य की उन्नति का रहस्य बतलाया गया है कि जो लोग परस्पर छल नहीं करते, एक दूसरे की सहायता करते और एक उद्देश्य को लक्ष्य में रखने वाले होते हैं वही यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों को कर सकते हैं दूसरे नहीं कर सकते।

वामदेव्य गान–व्याख्या

(१) पहिले मन्त्र में दो प्रश्न हैं–पहिला यह कि परमात्मा की अनुकूलता और स्वरक्षा किस प्रकार मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ? उसके उत्तर में कहा गया है कि श्रेष्ठ बुद्धियुक्त बर्ताव से अर्थात् बुद्धि, बल और स्वाश्रयावलम्बन का महत्व दर्शाया गया है।

(२) दूसरे मन्त्र में दिखलाया गया है कि शारीरिक बल का मुख्य साधन अन्न है।

(३) तीसरे मन्त्र में परमात्मा को ही तारक (saviour) वा रक्षक कहा गया है। किसी मनुष्य को रक्षक और तारक न मानने का इसमें उपदेश है। एक ईश्वर को रक्षक तथा तारक मानना यह सच्चा विश्वास आत्मिक–बल का परम साधन है।

इन तीन मन्त्रों में, जो सामगायन सम्बन्धी हैं, अक्षर गणित (Algebra) के मूल सिद्धान्तों का बोधन कराया गया है, क्योंकि अक्षरों के ऊपर १, २, ३ और "रा" आदि चिह्न (मूलवेद में) किये गये हैं जैसे कि अक्षरगणित वा बीज-गणित में देखते हैं। बम्बई के महात्मा श्री पण्डित बालकृष्णजी शास्त्री ने ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका के गुजराती अनुवाद में इसी विषय को उत्तमता से सिद्ध किया है।

हवनयज्ञ शब्द का विगाड़ हाईजीन है

रथ बनाना, गृह बनाना, सड़कें बनाना, विमान रचना आदि सब यज्ञ हैं, जैसा कि वेदमन्त्रों से स्पष्ट होता है पर वह कर्म जिसके द्वारा शारीरिक तथा मानसिक उन्नति सब प्रजा की मुख्य करके हो उसको हवनयज्ञ कहा गया है और उसका महत्व सब से अधिक है। इसका यह अर्थ नहीं है कि हवनयज्ञ करने पर रेल, तार, विमान, घर, सड़क आदि बनाने की ज़रूरत नहीं रहती, किन्तु जैसे शरीर में नेत्र होने से कान, नाक, हस्त, पग आदि सबकी ज़रूरत रहती है पर नेत्रों को प्रधान इन्द्रिय कहने में आता है। इसी प्रकार "हवनयज्ञ" अनेक यज्ञों में प्रधान यज्ञ है। यह वायु शुद्धि और मानसिक प्रसन्नता का प्रबल साधन है।

अंग्रेज़ी भाषा में जो हाईजिन शब्द है उसके अर्थ स्वास्थ्यरक्षा के हैं, निःसन्देह, जैसा कि श्री डाक्टर संगतरामजी का कथन है, वह हवनयजन का अपभ्रंश है। प्रयोजन हाईजिन और हवनयज्ञ का मुख्य करके एक ही है अर्थात् स्वास्थ्यरक्षा।

देशरत्न महात्मा स्वामी रामतीर्थजी का पूर्वपक्ष और हमारा उत्तरपक्षः—

बहुतसे वर्ष हुए कि हम मथुरा आर्यसमाज के उत्सव पर गये थे उस समय हमें शान्ति-आश्रम मथुरा की तरफ़ से "ए प्रपोजल फ्राम दी शान्ति-आश्रम" नाम की एक अंग्रेज़ी लघु पुस्तक मिली जिसमें महात्मा रामतीर्थजी एम० ए० ने अपने स्वतन्त्र विचार हवन के विरुद्ध दर्शाए हुए थे। उनके उत्तर देने के लिए हमारे पास बंगाल आदि से पत्र आए अतः हमने स्वामी रामतीर्थजी के लेख का उत्तर आर्यमुसाफिर मेगज़ीन (जो उर्दू का मासिक जालन्धर से निकलता था) में प्रकाशित करके उसकी कापी उक्त स्वामीजी की सेवा में भिजवादी, जब कि वे भारतवर्ष में काम कर रहे थे। उनकी मृत्यु के बहुत पीछे किसी भद्रपुरुष ने बंबई से उनके ही विचार लिख कर हमें बड़ौदा उत्तर के लिये भेज दिए। उस समय हमने श्री हकीम ताराचन्दजी प्रधान, आर्यसमाज गुजरात पंजाब से वह कापी आर्यमुसाफिर मे० की मंगवा भेजी जिस में हमारे उत्तर थे और जो उनके फाइल में सुरक्षित थी, उसी उर्दू लेख का हिन्दी अनुवाद करके हमने इसी संस्कारचन्द्रिका के हवनयज्ञ के विषय में प्रश्नोत्तर के रूप में प्रकरण की व्याख्या में प्रकाशित कर दिया है। इसमें प्रश्न वा पूर्वपक्ष तो उक्त स्वामीजी का और उत्तरपक्ष हमारा समझना चाहिये। महात्मा स्वा० रामतीर्थजी अमेरिका की उस भूमि से होकर यहां आये थे जिसमें स्वतन्त्र मतभेद रखते हुए सब विद्वान् सर्वोपकारी कामों में एक दूसरे को मित्र समझते हैं। हम इस विषय में उनसे युक्ति और प्रमाण द्वारा (अपने तुच्छ विचारानुसार) मतभेद रखने पर भी उनको माननीय देशरत्न समझते हैं और न कभी उक्त महात्माजी का मतलब था कि विद्वान् लोग उनके सब ही लेखों वा विचारों को विना युक्ति और प्रमाण मान लें और कौन जानता है कि यदि वह आज जीवित होते तो मद्रास के महाविद्वान् करनेल किंग, आई० एम० एस० की युक्तियों से अपना मत बदल लेते।

(प्रश्न) हवन करने वाले कहते हैं कि हवन वायु को शुद्ध करता और सुगन्ध फैलाता है हमारे विचार में यह बड़ी खेंच तान है। सुगन्ध सूंघने में

रोचक है और अन्य सर्व मादक द्रव्यों की न्याईं उस क्षण में बल देती है और पीछे निर्बलता उत्पन्न करती है। और सुगन्ध, हवन से बहुत न्यून उत्पन्न होती है। सबसे अधिक "कार्बनडाई अक्साईड" पैदा होती है जो हानिकारक है। एक समय था जब कि भारतवर्ष में जंगल अधिक और मनुष्य-संख्या बहुत न्यून थी। उन दिनों घी और अन्य "हाईड्रो कार्बन" पदार्थों का जलाना वनस्पति की वृद्धि में कुछ थोड़ा सा साहाय्यकारी हो सकता था। इसलिये कि इससे "कार्बनडाई अक्साईड" जो वनस्पति का वायु रूप भोजन है उत्पन्न होता था, परन्तु आज कल दशा सर्वथा परिवर्तित हो गई है। सच पूछो तो हमारे यहां जङ्गल नहीं रहे और देश में आबादी घनी हो गई जिस कारण वायु में अत्यन्त "कार्बनडाई अक्साईड" उपस्थित रहता है जो कि लोगों को सुस्त बना देता है। इन दिनों भारतवासियों को अधिक आक्सीजन और "ओज़ून" की आवश्यकता है नाकि "कार्बनडाई अक्साईड" की।

(उत्तर) जो यह कथन है कि सुगन्ध सूंघने में रोचक है और अन्य मादक द्रव्यों की न्याईं उस क्षण में बल देती और पीछे निर्बलता उत्पन्न कर देती है इन शब्दों के अन्दर एक भ्रान्ति काम कर रही है। प्रतीत होता है कि प्रश्न-कर्त्ता हवन अथवा जंगल की सुगन्धित वायु और अतर की सुगन्ध को एक ही अर्थों में ले रहे हैं। वास्तव में सब जानते हैं, कि जंगल अथवा उद्यान की सुगन्धित वायु के सूंघने से मस्तिष्क को बल और मनको आनन्द मिलता है और पीछे भी कोई निर्बलता उत्पन्न नहीं होती। जो मनुष्य प्रतिदिन प्रातःकाल वायु सेवन करने का स्वभाव रखते हैं, वे इस के साक्षी हो सकते हैं। यह सच है कि फूल अथवा अतर को नाक के निकट लगा कर नित्य सूंघने से नज़ला या जुकाम पैदा हो सकता है और उसका कारण यह है कि मर्यादा से रहित बहुत सुगन्ध निकट होने से अन्दर चली जाती है और इसलिये कि विना वायु संसर्ग के केवल फूल ही सूंघा जाता है। इसीलिये बुद्धिमान् और अनुभवी पुरुषों ने गुलदस्ते सूंघने के बजाय फूलों के कुण्ड कुछ दूरी पर रक्खे रहें ऐसा नियम किया है और उस दूर से आनेवाली हवा का श्वास लिया जाय जिस में उन की सुगन्ध बस गई है। ऐसी हवा का सूंघना पीछे नज़ला या जुकाम नहीं करता। कई अंग्रेज़ अपनी कोठियों के इर्द गिर्द फूल दूर दूर रखते हैं ताकि उनकी सुगन्धि अकेली मस्तिष्क में आने के स्थान में हवा से होकर आवे और

हवा में गुजरते समय हवा साथ मिल जाय ताकि वह तीव्र सुगन्ध ख़राबी पैदा न करे। अतर औषधि के तौर पर उपयोग में लाना दूर से अधिक लाभकारी हो सकता है। अतर और फूल को निकट से सूंघने से दोष उत्पन्न हो सकता है। यूक्लिप्टस ऑयल को अकेला सूंघने के स्थान में एक दो बिन्दु रूमाल पर छिड़क कर रूमाल को कोट की पाकेट में दूर रक्खा जाता है ताकि थोड़ी थोड़ी सुगन्धि हवा के साथ मिल कर आती रहे और इससे डाक्टर लोग नज़ले और जुकाम को दूर करते हैं।

जिस प्रकार हरएक वस्तु का योग्य व्यवहार सदैव लाभदायक हुआ करता है उसी प्रकार किसी सुगन्धि अथवा फूल था अतर के विषय में जानना चाहिये। अनुभव द्वारा प्रत्येक मनुष्य इस बात का निर्णय कर सकता है, कि विधिपूर्वक अर्थात् घृत तथा सुगन्धित द्रव्यों द्वारा हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि कभी भी आरम्भ में सुख और पीछे दुःख नहीं देती। कौन कहता है कि मकान के दर्वाज़े बन्द करके हवन करो जिससे तुम को केवल ऐसी सुगन्धि के सूंघने का अवसर मिले जिस में वायु मिला हुआ नहीं। विधिपूर्वक हवन या तो खुली जगह में या दर्वाज़े खोल कर किया जाता है और उस दशा में हवन से उत्पन्न होने वाली सुगन्धि के साथ वायु पर्य्याप्त मिल जाती है। कभी भी किसी मनुष्य के लिये वह सुगन्धित वायु जो हवन द्वारा उत्पन्न होता है आरम्भ में बल और अन्त में निर्बलता का कारण नहीं हुआ और घृत सुगन्धि की तीव्रता और उस तीव्रता के कारण उत्पन्न होने वाले रोगों को निःसन्देह शमन करता है।

यह जो शङ्का की जाती है कि हवन से सुगन्धि बहुत थोड़ी उत्पन्न होती और सब से अधिक "कार्बनडाई अक्साईड" पैदा होता है। इसके उत्तर में पहिले यह सोचना चाहिये कि प्रश्नकर्त्ता सुगन्धि की उत्पत्ति को तो स्वीकार करता है, हम आगे चलकर दिखायेंगे कि सुगन्धि भी कम नहीं किन्तु अधिक उत्पन्न होती है। प्रश्नकर्त्ता इस बात को सिद्ध करने के लिये कि "कार्बनडाई अक्साईड" अधिक उत्पन्न होता है किसी सायंस की पुस्तक का प्रमाण तो देते ही नहीं। क्या कोई भी किसी पदार्थविज्ञान अथवा रसायनशास्त्र की पुस्तक का प्रमाण देकर कह सकता है कि चन्दन, घी, खांड, गिलोय, कपूर, केशर, अगर, तगर, मुश्कवाला, जटामांसी, धूप, गूगल, लोबान और यवादि को प्रदीप्त अग्नि में जलाने से "कार्बनडाई अक्साईड" की अधिक उत्पत्ति

होती है और सुगन्धि उसकी अपेक्षा बहुत कम। नासिका इन्द्रिय रखने वाला प्रत्येक मनुष्य हवन के स्थान में सुगन्धि अधिक प्रतीत करता है न कि दुर्गन्धि।

हां यह ठीक है कि जलने की क्रिया से "कार्बनडाई अक्साईड" भी उत्पन्न हुआ करता है किन्तु इसका परिमाण भिन्न भिन्न वस्तुओं के जलने से भिन्न भिन्न प्रकार का होता है न कि एक जैसा। तम्बाकू, लालमिर्च, गन्धक, कोयला, घी और चन्दन प्रत्येक वस्तु जल सकती है परन्तु प्रत्येक के जलने से समान परिमाण में "कार्बनडाई अक्साईड" का उत्पन्न होना कोई विद्वान् नहीं मान सकता। यतः—हवन में सुगन्धित द्रव्य, जो डिसइनफेक्टेंट तथा रोगनाशक हैं, जलते हैं इसलिये आक्सीजन और ओज़ून (शुद्ध तथा सुगन्धित वायु) कार्बन-डाई अक्साईड" की अपेक्षा बहुत उत्पन्न होता है। बाग़ अथवा फुलवाड़ी के अन्दर जब हम सैर करते हैं तो वहां भी हवन भूमि की तरह आक्सीजन वा प्राणवायु और ओज़ून बहुत होता है परन्तु उसका यह अर्थ नहीं कि "कार्बन-डाई अक्साईड" का अत्यन्त अभाव होता है।

सृष्टि में यह अद्भुत नियम है कि "कार्बनडाई अक्साईड" यदि साधारण अथवा स्वच्छ वायु के साथ मिला हो तो भी बीमारी अथवा दोष का कारण नहीं होता किन्तु जब दुर्गन्धि अथवा सड़ांद के साथ मिला हुआ हो तो उस समय दोष उत्पन्न करता है। हमारे कथन की पुष्टि "हाईजिन" नामक पुस्तक से, जो डाक्टर जे० लैननाटर एम० ए० एम० डी० आर० एच० फ़र्थ० एफ० आर० सी० एस० कृत से होती है, यह लंडन के लांगमैन ग्रीन एण्ड को० ने प्रकाशित की है, उसके पृष्ठ १३ पर लिखा है कि:—

"यद्यपि बहुत काल ऐसी कोठरियों में ठहरे रहना जिसमें बहुतसे आदमी हों अथवा खिड़कियां पर्याप्त न हों और जिनका वायु विशेष करके दोषयुक्त हो उनमें "कार्बोनिक एसिड" वायु अधिक परिमाण में होता है। और जिन स्थानों से शिरःपीड़ा, मूर्छा, शिर चकराना आदि रोग उत्पन्न होजाते हैं उनका कारण गरमी अथवा "कार्बनडाई अक्साईड" की उपस्थिति ही नहीं है। यह दोष वास्तव में वायु के अन्दर आक्सीजन वा प्राणवायु के न्यून होजाने से और कुछ वायु में मानुषी अथवा पशु प्राणियों के मलिन अणुओं के कारण, जो फेफड़ों वा त्वचा द्वारा निकलते हैं, पैदा होते हैं"।

फिर इस बात को दिखाने के लिये कि मनुष्य अथवा पशुओं के मलिन अणुओं का परिणाम कहांतक हानिकारक होता है, डा० लैननाटर उसी पृष्ठ पर लिखते हैं कि:—

"उस वायु का दम लेने से जिसमें मलिन अणु मिल रहे हों भारीपन, आलस्य, शिर:पीड़ा आदि रोग उत्पन्न होते हैं। पशुओं पर जो प्रयोग (तजुरबे) किये गये उनमें वाष्प और 'कार्बोनिकडाई अक्साईड' को वायु से पृथक् कर लिया गया, केवल मलिन अणुओं को हवा में मिला हुवा रहने दिया तो प्रतीत हुआ कि यह मलिन अणुओं से युक्त वायु बड़ा विषमय है यहांतक कि एक चूहा ४५ मिनट में मर गया"।

पश्चिमीय इन प्रमाणों से हम यह कह सकते हैं कि "कार्बनडाई अक्साईड" तो हानिकारक नहीं, किन्तु मलिनता के अणु हैं और इन मलिन अणुओं को हलका करके दूर दूर तक भगा देने में हवन करने अथवा अग्नि के जलाने के सिवाय और कोई उत्तम साधन है ही नहीं। हवन के यह लाभ हैं:—

(१) हवन करने से सुगन्धि फैलती है जिसकी साक्षी प्रत्येक नासिका रखने वाला नीरोग मनुष्य दे सकता है और इस सुगन्धि के कारण वायु में आक्सीजन तथा ओज़ून भर जाता है। (२) "कार्बनडाई अक्साईड" हवन करने से नाममात्र उत्पन्न होती है वह स्वयं किसी प्रकार के रोग का कारण नहीं होता, जैसा कि हम ऊपर डा० नाटर के लेख से दिखा चुके हैं। (३) वे मलिन-अणु जो अत्यन्त विषमय होते हैं और जिनके कारण चूहे तक मर जाते हैं उनको हलका और सूक्ष्म बना कर घरों से बाहर अन्तरिक्ष में पहुंचाने का साधन हवन की अग्नि है।

प्रश्नकर्त्ता ने जो यह कहा था कि "कार्बनडाई अक्साईड" ही मनुष्यों को आलसी बना देता है सो यह बात सर्वांश में ठीक नहीं जैसा कि हाईजिन के प्रसिद्धकर्त्ता के लेखानुसार, मनुष्यों अथवा पशुओं के मलिन अणु आलस आदि अनेक रोगों के कारण होते हैं। यत: प्रश्नकर्त्ता कहते हैं कि आज कल लोगों को आक्सीजन और ओज़ून की ज़रूरत है अत: हम हाईजिन के प्रमाणों से दिखाना चाहते हैं कि आक्सीजन और और ओज़ून क्या वहां मिलता है जहां सुगन्धि होती है अथवा और कहीं पर?

"यह गैस (धूम) बहुत भारी होती है पानी में यह घुल जाती है स्थान और ऋतु के अनुसार यह सदैव वायु में उपस्थित रहती है। लंडन की गलियों में प्रति सहस्र भाग पीछे ३६ अंश के परिमाण में पाई जाती है और ग्रामीण स्थानों अथवा पहाड़ों की चोटियों पर प्रतिसहस्र, ३ अंश के परिमाण में उपस्थित रहती है"।

यदि स्वच्छ वायु के १००० भाग हों तो उसमें ४ भाग कार्बोनिक एसिड गैस के सदव पाये जायेंगे जब तक कार्बोनिक एसिड गैस इस अवधि से बढ़ न जाय तब तक यह वायु को विषमय नहीं करता (देखो पृष्ठ ४० नाटरकृत हाईजिन)। इससे यह बात प्रकट है कि हवन की सुगन्धि के साथ जो बहुत अल्प परिमाण में कार्बनडाई अक्साईड उत्पन्न होता है उसका होना ज़रूरी है और सदैव निर्मल वायु में भी प्रति सहस्र ४ अंश के परिमाण में पाया ही जाता है।

" आक्सीजन की एक बदली हुई दशा जो कि वायुमंडल में थोड़ी २ पाई जाती है उसका नाम 'ओज़न' है। यह उपयोगी गैस है और एक प्रकार की तीव्र आक्सीजन है, निर्मल वायु में यह बहुत अधिक पाई जाती है और उन स्थलों में जहां पर मनुष्य अथवा पशुओं की मलिनता के अणु बहुत हों वहां यह अत्यन्त न्यून पाई जाती है और जहां पर मनुष्य अथवा पशु बहुत बसे हुए हैं वहां भी कम होती है। जब कभी वायु में बिजली का प्रसार हो तब ओज़न पैदा हो जाता है। फिर यही ओज़न साधारण आक्सीजन के रूप में अग्नि की क्रिया से बदल जाता है। ओज़न की पहिचान उसकी गन्ध है जो कि बहुत तीक्ष्ण होती है यहांतक कि यदि वायु के पच्चीस लाख भाग हों और उसमें ओज़न का भाग एक हो तो फिर भी उसकी उपस्थिति प्रकट हो सकती है। जङ्गल का खुला वायु और समुद्र के वायु में उसकी तीव्रता विशेष करके प्रतीत होती है" (देखो हाईजिन नाटरकृत पृष्ठ ३०)।

इससे प्रकट होता है कि जिसको पश्चिमीय डाक्टरों की परिभाषा में "ओज़न" कहा गया है उसको संस्कृत भाषा में सुगन्धित वायु अथवा शुद्ध वायु कहते हैं और आक्सीजन गैस का "प्राणवायु" नाम है।

ओज़न निर्मल वायु में मिली रहती है, जङ्गल और समुद्र के तट पर उसको उष्णता दी जाय तो यह ओज़न आक्सीजन का रूप बन जाती है, परन्तु उसकी सुगन्धि यहांतक तीव्र होती है कि—२५००००० (पच्चीस लाख) भागों में एक भाग होने पर भी अपना प्रभाव प्रकट किये बिना नहीं रहेगी।

इसी कारण थोड़े भी सुगन्धित द्रव्यों का हवन किया हुआ सुगन्धि को सर्वत्र मकान में अथवा गली कूचों में फैला देता है और जिस प्रकार जङ्गल अथवा बाग़ की हवा से मस्तिष्क आनन्द प्राप्त करता है उसी प्रकार उस स्थल की वायु से, जहां हवन होरहा अथवा होचुका है, मस्तिष्क आनन्द अनुभव करने लग जाता है अतएव हवन करने से निस्सन्देह ओज़ून और आक्सीजन की वृद्धि होती है।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि (Carbonic Acid or Carbondi Oxide,) "कारबोनिक एसिड वा कार्वनडाई अक्साईड" कहां कहां पाया जाता है और उसकी पहचान किस प्रकार हो सकती है ? सोडावाटर के कारख़ानों में जहां "कारबोनिक एसिड" बहुत तय्यार होता है वहां की वायु में प्रतिसहस्र भाग में दश भागों तक मिलता है। जब "कारबोनिक एसिड" सहस्र भागों में पचहत्तर भाग पाया जावे तो उस समय यह विषरूप हो जाता है और जब सहस्र भाग पीछे पन्द्रह भाग इस के वायु में हों, तो शिरः-पीड़ा, मूर्च्छा, सिर चकराना और श्वास उखड़ने की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। जब प्रति सहस्र दश भागों तक पाया जावे तब तो स्वास्थ्य पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं दिखाता। जब बहुत परिमाण में हो तब मूर्च्छारोग उत्पन्न कर देता है। हम सब उस दुर्गन्धित वायु को जानते हैं जो कि बिना खिड़कियों के कमरों वा उन कोठरियों से आती है जिनमें बहुतसे मनुष्य तङ्ग बैठे हुए रहते हैं। जब "कारबोनिक एसिड" सहस्र भाग पीछे छः दशमलव के परिमाण में हो तो इसके होने का पता तक नहीं प्रतीत होता, क्योंकि इतना परिमाण वायु के साथ मिल कर प्रतीत होने वाली दुर्गन्धि नहीं बनती और इतने परिमाण का हवा में होना आवश्यकीय है और यह परिमाण हानिकारक नहीं। जब कि "कार्बोनिक एसिड" इस परिमाण से बढ़ जाता है तब साथ के मलिन अणु, जो हवा में होते हैं, प्रतीत होने लगते हैं।" (देखो हाईजिन पृष्ठ १३)।

जो लोग कहा करते हैं कि हवन करने से "कार्वनडाई अक्साईड" बहुत पैदा होता है वह कभी भी किसी सायंसदां का प्रमाण नहीं दे सकते। उपरोक्त लेख से यह प्रकट है कि जब "कार्बोनिक एसिड" अथवा "कार्बनडाई अक्साईड" मर्यादा से अधिक बढ़ जाता है, तब मलिन अणु नासिका द्वारा दुर्गन्धि के रूप में प्रतीत होने लगते हैं और प्रति सहस्र अणु भाग छः दशमलव के परिमाण में

उस का रहना कुछ भी हानि नहीं करता। अतः हवन करते समय अथवा उस के पश्चात् कोई भी मनुष्य कभी दुर्गन्धि प्रतीत नहीं करता इसलिये पूर्वोक्त पश्चिमीयप्रमाण द्वारा कह सकते हैं कि हवन करने से "कार्बनडाई अक्साईड" कभी भी अधिक उत्पन्न नहीं होता जिससे कि हानि के भय की सम्भावना हो, प्रत्युत बड़ी भारी सुगन्धि फैलती है जो कि सर्वथा रोगनिवारक है।

यूरोपादि में जितने प्रकार आजकल वायुशुद्धि के प्रचलित हैं, उनमें प्रायः "फायर स्टोव्ज़" * (अंगीठियाँ) का उपयोग किया जाता है ताकि दूषित वायु उष्ण होकर फैले और हलका बन कर गृह की खिड़की अथवा भिन्न मार्गों से दूर निकल जावे और उसकी जगह तात्कालिक ठण्डी वायु नीचे के द्वारों से आ सके। यही नियम हवन के करने में पाया जाता है। भेद इतना है कि स्टोव्ज़ (अँगीठी) की दशा में आकाश में सुगन्धि नहीं फैल सकती जब कि हवन की दशा में घर और वायुमण्डल सुगन्धि से महक उठता है।

(प्रश्न) गन्धक जलाने तथा फेनाइल छिड़कने से रोग के त्रसरेणु तथा जन्तु नष्ट होते हैं इसलिये हवन के साथ इन का भी उपयोग किया जाय तो अधिक लाभ रहेगा।

(उत्तर) गन्धक के जलाने अथवा फेनाइल के छिड़कने की आवश्यकता नहीं, हवन का करना ही पर्य्याप्त है। गन्धक जलाने से कई प्रकार के रोगोत्पादक अणु दूर हो सकते हैं किन्तु गन्धक की जो विलक्षण दुर्गन्धि है वह मस्तिष्क के लिये बहुत हानिकारक है और गन्धक का धूम लेने से खांसी तथा छींकें आती हैं। यह प्रत्येक मनुष्य प्रत्यक्ष अनुभव करता है जब कि वह दीवासलाई की सींक का धूआँ असावधानी से ले बैठता है। फेनाइल में अति दुर्गन्ध होती है और जहां पर यह छिड़का जाय वहां पर आने वाले मनुष्य को अवश्य शिरः-पीड़ा प्रतीत होने लगती है, इसलिये इसके उपयोग की आवश्यकता नहीं। हवन की सामग्री गन्धक और फेनाइल से बढ़ कर गुणदायक होने पर किसी प्रकार के रोग को, जो कि गन्धक या फेनाइल, खांसी और शिरःपीड़ा के रूप में करते हैं, नहीं करती। जो लोग गरम कपड़ों अथवा जेब में फेनाइल की गोलियां रखते हैं वे कभी भी उसकी भयङ्कर दुर्गन्धि से बच नहीं सकते। जेब में जटा-मांसी वा कपूरकचरी वा नागरमोथा वा कपूर की टिकिया रखना सर्वोत्तम है।

* Fire Stoves.